अनोखी कथाएं

प्रकाशक:

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला

पारसनाथ जैन मन्दिर, गुलाब वाटिका, लोनी रोड, दिल्ली

अनोखी कथाएं

भाग -1

ब्र.धर्मचंद्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

अनोखी कथाएँ

सम्पादन

ब्र० धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

भाग (1)

प्रकाशक

आचार्य धर्मश्रुतग्रन्थमाला

दिल्ली

● प्रेरणा : क्षु० राजमति माता जी

● संकल्न एवं संपादनः धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

● प्रकाशन वर्ष : 2000

● पुष्पं नं : 1

● मूल्य : 20 रुपये

● प्रकाशक : आचार्य धर्म श्रुतग्रन्थ माला

● प्राप्ति स्थान : जैन मंदिर गुलाव वाटिका
लोनी लोड दिल्ली

समय के साथ

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के कोने कोने में बच्चों और जन–सामान्य के लिए कथा कहानियों का साहित्य सृजित होता रहा है। भारत में भी विभिन्न भाषाओं में ऐसी अनेकों कहानियां हैं। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में लेखक इन्हें लिखने में पीछे नहीं रहे।

भारतीय संस्कृति की सामाजिक, सहिष्णुता और समन्वय की भावना को लक्ष्य में रखकर भारतीय लोक कथाओं का संकल्न किया।

जैन कथाओं का योग दान महत्वपूर्ण है ही किन्तु जैनेत्तर कथाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक कथा के पीछे कुछ न कुछ रहस्य जरूर होता है जिसके कारण कथा प्रचलित होती है।

कथा साहित्य हजारों वर्षों से मौखिक चला आ रहा है उसका संकल्न करके प्रकाशित करने का एक छोटा सा प्रयास किया जा रहा है। जो लगभग सभी को पढ़ने में रूचिबद्ध होगा। कथा ऐसी सरस विद्या है जिसको बाल–गोपाल रूचि से पढ़ते है और सुनते ही नहीं उनके अन्तः करण को संस्कारित भी करते है।

मुझे आशा है कि आप इन अनोखी कहानियों को पढ़ कर ज्ञान प्राप्त कर दूसरों को पढ़ावे या सुनावें।

धर्मचंद्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

अनुक्रम

विषय	पेज सं	विषय	पेज सं
उत्तराधिकारी	1	शराब का नशा	25
पुरुषकार की जीत	3	मतलब	26
संकल्प के प्रति समर्पण	5	रक्स चाइल्ड	26
संन्यासी को सोने में गंध	6	मैं क्या बताऊँ	27
चमत्कार	8	लाद दिया	28
दर्द का भान	9	दाढ़ी में आग	28
जीवन्त चित्र	9	जरूरत	30
पुदगल का स्वभाव	13	जंज अपराधी	30
मेरी सीमा	14	कोरा कागज	31
तुम मान लो	15	राजा और संन्यासी	32
आवरण हटा	17	यमराज	33
स्टोर खाली हो जाये	18	देखा देखी	34
चौकीदारी	19	घृणा और प्रेम	35
मित्रों से परामर्श	20	तुम मूर्ख हो	36
स्वधर्म राजधर्म	20	नीयत का असर	37
पसीना सुखाओं	22	आना और जाना	38
आज पूर्णिमा	22	गधे का घोड़ा	40
तर्कबाज	23	बातों से प्रसन्न	41
पता ही नहीं लगता	24	आस्था	42

नीचे भी देख लो	43	धार्मिकाता कितनी	62
नाटक	44	दासी के दास	63
बुखार	44	आपत्ति	65
खुदा के साथ	45	सोने की सीमा	65
विदेश जाने की आवश्यकता नही	46	मन की परिणति	66
प्रतीक्षा	47	दरवाजे पर लिखा	68
सम्राट सिकन्दर	48	घर की प्रतीक्षा	69
शास्त्रीय संगीत	49	मैं मेरे भाग्य का स्वामी	69
सलाह	50	डबल रोटी खान	69
लाभदायक	50	तुम एक काम करो	70
मैं नहीं मानता	52	आप हंस रहे हो	71
मैं तो छोटा हूँ	52	पप्पू की मां	72
डाक्टर का परामर्श	52	कार्य में मस्त	72
वाणी का चमत्कार	53	कुरुप ही कुरुप	73
एककाम आपही करदें	54	कंजूसी का असर	74
धन्यवाद	55	तुम ठीक कहती हो	75
अपराध	55	पारस पत्थर	75
पशु की तरह	56	राजा भोज	85
श्रम का मूल्य	57	सत्या का फल	89
तोड़ सकते है जोड़ नहीं	58	महाराजचामुंडरायकीशिक्षा	93
आशा	59		
रूप में परिवर्तन	59		

उत्तराधिकारी

प्रसेनजित मगध का राजा था। उसने सोचा–मुझे अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करना है। पुरानी परंपरा थी कि जो बड़ा लड़का होता वह राज्य का उत्तराधिकारी बन जाता प्रसेनजित ने सोचा– मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं इस परम्परा को तोड़कर, मेरे सौ पुत्र हैं उनमें जो योग्यतम होगा उसे अपना उत्तराधिकारी सौंप दूंगा। उन्होंने उपाय सोचा कि परीक्षा करूं,, योग्यता को परखूं। उन्होंने अपने सारे अधिकारियों को सारी योजना बता दी। किस प्रकार व्यवस्था करनी है यह भी उन्हें अच्छी तरह समझा दिया। उसी दिन पचास राजकुमारों को भोजन के लिए एक पंक्ति में बैठा दिया गया। पचास थाल परोस दिए गए। भोजन की तैयारी होने वाली है। सब राजकुमार भोजन की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

महाराज ऊपर बैठे हैं झरोखे में। सब देख रहे हैं। जैस ही भोजन की तैयारी हुई, आदेश था कि जैसे ही सूचना मिले सबको भोजन शुरू करना है। इधर भोजन की सूचना मिली और उधर दरवाजे खुले। चारों तरफ शिकारी कुत्ते झपट पड़े। बड़े खूंखार कुत्ते ! भगदड़ मच गई। सभी राजकुमार प्रभावित हो गए। मनः स्थिति का सन्तुलन समाप्त हो गया। भोजन छोड़–छोड़कर वे

भागने लगे। सारे राजकुमार भाग गये। केवल एक बचा, जो सबसे छोटा था। उसका नाम था श्रेणिक। वह बैठा रहा, भागा नहीं। भोजन कर लिया, पूरा भोजन किया। भोजन के बाद उठा और चला गया, दूसरा दिन हुआ। राजसभा जुड़ी। पचास राजकुमार सामने बैठे हैं। पूरी मंत्री परिषद, अधिकारी, संसद के और नगर के कुछ प्रतिष्ठित लोग बैठे हैं। राजा ने कहा कि मैं आज अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करना चाहता हूं। लोगों को आश्चर्य हुआ। घोषणा की कौन–सी बात है! बड़ा राजकुमार ही तो होगा। राजा ने और स्पष्ट करते हुए कहा– मैं इस परम्परा को तोड़ना चाहता हूं। मैं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा जो सबसे योग्य होगा और मैंने योग्यता की कसौटी कर ली है। वह कसौटी अब आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूं। सारे राजकुमार भी चौकन्ने हो गये। हर व्यक्ति सोचने लगा कि किसका नाम आयेगा। शायद यही सोचने लगे कि मेरा नाम आएगा। व्यक्ति के मन में एक भावना होती है, आकांक्षा होती है। सब एक–दूसरे का मुंह देखने लगे। लोगों में भी बड़ा कुतूहल पैदा हो गया, सब में जिज्ञासा जाग गई। बड़ी उत्कंठा पैदा हो गई कि क्या होगा? राजा ने कहा– तुम लोग कल भोजन करने बैठे। भोजन किया? सब के सब एक साथ बोले– महाराज! भोजन कैसे करते? आपके अधिकारी बिलकुल व्यवस्था को जानते ही नहीं।

व्यवस्था का कोई पता नहीं। इतने गैर जिम्मेदार हैं कि अपना दायित्व भी नहीं निभाते। हम तो भोजन करने बैठे और उधर से शिकारी कुत्ते भीतर आ गये। उन्होंने कोई व्यवस्था ही नहीं की, कैसे भोजन करते?

क्या किसी ने भी भोजन नहीं किया?

श्रेणिक बोला– महाराज! मैने किया। राजा बोला– तुम मूर्ख हो। ये तो सारे समझदार हैं। शिकारी कुत्ते आये। भोजन छोड़–छोड़ कर भाग गये। तुम वहां कैसे रहे? कुत्ते काट खाते तो क्या होता? श्रेणिक बोला– मैं मूर्ख नहीं। जो अकेला खाना चाहता है, कुत्ते उसे काटते हैं। जो दूसरों को खिलाना जानता है, कुत्ते उसे कभी नहीं काटते। मेरे सामने पचास थाल पड़े थे। कुत्ते आते गये। थाल सरकाता रहा। वे भी खाते रहे, मैं भी खाता रहा। जो अकेला खाता है, उसे कुत्ते काटते हैं। जो दूसरों को खिलाना जानता है, उसे कुत्ते कभी नहीं काटते।

राजा ने श्रेणिक को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया।

–०–

पुरुषकार की जीत

राजा भोज बहुत विद्वान थे। वे विद्वानों का बहुत सम्मान करते थे। एक बार राजा भोज ने राजसभा में घोषणा की–कोई भी विद्वान, पंडित मुझे स्वरचित नया

श्लोक सुनायेगा, उसे एक लाख रुपये पुरस्कार में दूंगा। दूसरे ही दिन अनेक पंडित राजा भोज की सभा में श्लोक सुनाने के लिए प्रस्तुत हो गये। राजा भोज का मंत्री उन सबको देखकर चिन्तित हो उठा। वह बुद्धिमान था। उसने सोचा–यदि इस प्रकार पंडित प्रतिदिन श्लोक सुनायेंगे तो खजाना खाली हो जायेगा और राजा की घोषणा रद्द करना असम्भव है। गहन चिन्तन के बाद मंत्री ने एक उपाय ढूंड निकाला।

प्रत्येक विद्वान खड़ा होकर पहले राजा को आशीर्वाद देता, फिर राजाज्ञा प्राप्त कर श्लोक पढ़ता। मंत्री प्रत्येक विद्वान के श्लोक को सुनकर कहता, 'यह श्लोक नया नहीं है, मैंने इसे अनेक बार सुना है।' मंत्री की प्रतिभा इतनी तेज थी वह प्रत्येक श्लोक को एक बार सुनकर वैसा का वैसा याद कर लेता और उसे उसी शैली में उसी प्रकार सुना देता। सारे विद्वान तिरस्कृत हो जाते। वे अपना मुंह दिखाने योग्य भी नहीं रहते। पंडितों ने अनेक प्रकार के अनेकानेक रागों में तथा विविध विधाओं में बहुत परिश्रम करके नये–नये श्लोक बनाये, किंतु मंत्री ने प्रत्येक बार उनकी आशाओं पर तुषारापात कर दिया। सारे विद्वान दीन–हीन, निराश हो गये। उनके मन में मंत्री के प्रति भारी रोष व्याप्त हो गया। एक बार एक विद्वान बहुत सारे विद्वान साथ लेकर आया। उसने राजा को श्लोक में ही आशीर्वाद देते हुए कहा–

स्वस्ति श्री भोजराज! त्रिभुवनविदितो धार्मिकस्ते पिताभूत्।
पित्रा तेनोदगृहीता नवनवतिमिता रत्नाकोट्यो मदीया।।
तां मे देहीति राजन्! सकलबुधजनैः ज्ञायते तत्त्वमेतद्।
ना वो आनन्ति केचित् ममकृतिरथवा देहि लक्षं ततो माम्।।

'राजन, आपका कल्याण हो। आपके पिता बहुत धार्मिक थे और जगत् विख्यात थे। एक बार आपके पिता ने मेरे से निन्यानबे करोड़ रत्न–मुद्राएं ली थीं। राजन्! आप वे मूद्राएं मुझे दें क्योंकि सारे विद्वान इस सत्य को जानते हैं। यदि कोई नहीं जानता है तो मेरी कृति नयी है इसलिए आप मुझे एक लाख रुपये पुरस्कार में दें।' सारे विद्वान, सारे सभासद खिलखिला उठे। मंत्री भी एकदम चुप हो गया। विद्वान एक लाख का पुरस्कार जीत गया।

–o–

संकल्प के प्रति समर्पण

एक छोटा लड़का साहसी काम करने के लिए उद्यत हुआ। वह महाराज शिवाजी की हत्या करने आया। सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। उसके हाथ में शस्त्र था। उसे शिवाजी के सम्मुख उपस्थित किया गया। शिवाजी ने पूछा, 'क्यों आये हो यहां? हाथ में तलवार क्यों ली है?' वह बालक साहस के साथ बोला, 'शिवाजी को मारने आया हूं।'

'क्यों मारना चाहते हो शिवाजी को?'

'मैंने एक व्यक्ति को वचन दे दिया था। उसी की पूर्ति के लिए आया हूं।'

'अरे, तुम किसको वचन दे चुके हो?'

'मैंने शिवाजी के शत्रु राजा सुभानराय को वचन दे दिया था। मैं उसकी पूर्ति से बंध गया था। मैं मारने के लिए आया हूं।'

शिवाजी उसकी स्पष्टवादिता और निर्भयवादिता से बहुत प्रसन्न हुए। छोटी अवस्था और इतना पराक्रम, साहस और स्पष्टवादिता। उन्होंने बच्चे के साहस को, पराक्रम को पहचान लिया। वे बोले, 'तुम्हें इस जघन्यतम अपराध के लिए क्या दण्ड मिलना चाहिए?'

'जो आपकी इच्छा हो वह दण्ड मुझे स्वीकार है।'

'इसका दण्ड है मृत्यु।'

'स्वीकार है। मैं आपकी पकड़ में आ गया। मैं विवश हूं। पर एक बार आप मुझे मेरी मां से मिलने के लिए जाने दें। मैं मां से मिलकर लौट आऊंगा, फिर आप मुझे मौत के घाट उतार देना।'

'अरे, वापस कौन आयेगा?' मौत के मुंह में जाने के लिए कौन आयेगा? तुम मुझे बहका रहे हो।'

'महाराज, विश्वास करें। मैं मां से मिलकर लौट आऊंगा। मुझे मरने का भय नहीं है।'

लड़के को मुक्त कर दिया।

वह मां से मुलाकात कर, ठीक समय पर आ गया।

संन्यासी को सोने में गंध

गांव में एक संन्यासी आया। वह तेजस्वी और शक्तिशाली था। राजा ने उसकी प्रशंसा सुनी। वह दर्शन करने आया। उसे अपूर्व शान्ति की अनुभूति हुई। उसने कहा, 'महाराज! कुछ दिन के लिए आप मेरे महल में चलें।' संन्यासी ने कहा, 'महलों में मुझे सोने की गंध आती है। मैं वहां नहीं रह पाऊंगा।' राजा बोला, 'कैसी बात करते हैं? सोने की गंध कहां है? लोग सोने का नाम लेते ही उस ओर दौड़ पड़ते हैं। आप उससे दूर जाना चाहते हैं। मैं वहां रहता हूं, मुझे आज तक गंध नहीं आयी।' संन्यासी ने कहा, 'चलो मेरे साथ।' संन्यासी राजा को चमारों की बस्ती में ले गया। राजा को चमड़े की दुर्गंध सताने लगी। उसने अपनी नाक कपड़े से ढंक ली। संन्यासी एक चमार के घर पर जा रूका। राजा ने कहा, 'महाराज! कहां ले आये आप? बड़ी दुर्गंध आ रही है। मेरा जी घुट रहा है। जल्दी चलें।' संन्यासी बोला, 'कैसी दुर्गंध! आप भी बड़ी विचित्र बात कर रहे हैं। आप इस घर के मालिक से पूछें।' घर का स्वामी आया। संन्यासी ने पूछा, 'अरे, तुम्हें यहां दुर्गंध नहीं आती?' घर के स्वामी ने कहा, 'नहीं, दुर्गंध है कहां? मुझे यहां रहते पचास वर्ष हो गये। कभी दुर्गंध की अनुभूति नहीं हुई।' संन्यासी राजा को लेकर महल में आ गया। वह राजा से बोला, 'महाराज! आपको वहां चमड़े की

दुर्गंध आ रही थी। वहां रहने वालों को उसका अनुभव ही नहीं हो रहा था। इसी प्रकार यहां आपके महलों में मुझे सोने की गंध आती है, आपको उसका अनुभव ही नहीं होता जो जिसमें रच–पच जाता है, वह वैसा ही हो जाता है।

—o—

चमत्कार

एक आदमी बीमार था। बहुत घबरा रहा था। एक वैद्य आया। रोगी को देखा। उसकी घबराहट को देखा। वैद्य बोला, 'घबराओ मत। साझ होते–होते तुम स्वस्थ हो जाओगे, घूमने–फिरने लग जाओगे। तुम्हारी घबराहट मिट जायेगी। मैं ऐसी दवा दूंगा कि रोग मिट जायेगा।' वैद्य बाहर गया। राख और नमक की पुड़िया बांधी। रोगी को पुड़िया देते हुए कहा, 'यह बहुत कीमती दवा है। दो पुड़िया लेते ही बीमारी शान्त हो जायेगी।' रोगी को इतना विश्वास दिलाया कि स्वस्थ होने की बात आत्मा तक पहुंच गयी। रोगी ने पुड़िया ली। दूसरी पुड़िया लेते ही उसे स्वस्थता का अनुभव होने लगा और सांझ से पहले ही वह चलकर वैद्य के घर चला गया। न बीमार और न घबराहट। पुड़िया का चमत्कार नहीं था, चमत्कार था बात का भाव तक पहुंच जाना।

—o—

दर्द का भान

बर्नार्ड शॉ के जीवन की एक घटना है। वे बहुत मजाक करने वाले व्यक्ति थे। एक बार उनके हृदय में दर्द हो गया। डॉक्टर को बुलाया और कहा, 'हार्ट में दर्द हो गया है।' डॉक्टर जानता था। वह बोला, 'शॉ! मुझे बहुत पीड़ा हो रही है। क्या करूं?' डॉक्टर ने ऐसा आ कार बताया कि शॉ घबरा गये। वे तत्काल उठे।। पानी लाये। पानी पिलाया, उपचार किया। डॉक्टर ठीक हो गया। वह उठा और बोला, 'शॉ! मुझे फीस दें।' शॉ ने कहा, 'किस बात की फीस दूं?' डॉक्टर ने कहा, 'इलाज तो मैंने तुम्हारा इलाज किया है। उसकी फीस चुकाओ।' शॉ बोला, 'इलाज तो मैंने तुम्हारा किया। उपचार कर मैंने तुम्हें स्वस्थ बनाया।' डॉक्टर ने कहा, 'शॉ, मैंने यह सारा नाटक आपके लिए ही तो रचा था। बताइए, आपका दर्द कहां है?' वास्तव में शॉ दर्द को भूल ही गये थे। उन्हें आत्मविस्मृति हो गयी थी। दर्द का उन्हें भान ही नहीं रहा।

—o—

जीवन्त चित्र

राजा ने चित्रकारों को आमंत्रित किया। देश–भर के चित्रकार एकत्रित हुए। राजा ने कहा, 'राज्य–मुद्रा

बनानी है। उसमें बांग देते हुए मुर्गे का चित्र होगा। ऐसा जीवन्त चित्र बनाओ जिससे मुद्रा की श्रेष्ठता सिद्ध हो सके। सर्वश्रेष्ठ चित्र पुरस्कृत किया जायेगा।' चित्रकार बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा की सब शर्तो को स्वीकार कर लिया। कुछ दिन बाद वे चित्र बनाकर लाये और राजा के सामने प्रस्तुत किए। राजा ने देखा। उसे चित्र बहुत अच्छे लगे। उसने सोचा, 'मैं कोई कलाकार तो हूं नहीं। किस चित्र को प्राथमिकता दी जाये, इसका निर्णय कौन करे?' राजा ने सोच–विचारकर एक बूढ़े चित्रकार को बुलाया। किसी समय वह राज्य का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार था, किन्तु अब बूढ़ा हो चला था। राजा ने कहा, 'इन चित्रों में कौन प्रथम है, इसका निर्णय करो।' चित्रकार सारे चित्रों को ले गया। दूसरे दिन आकर बोला, 'महाराज! मुद्रा में देने लायक एक भी चित्र नहीं है। सब बेकार है।' यह कैसे कहते हो? चित्र बहुत सुन्दर है।' राजा ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा। चित्रकार बोला, 'सुन्दर तो हैं, किन्तु आपने कहा था कि जीवन्त चित्र होना चाहिए। इसमें जीवन्त चित्र एक भी नहीं है।' राजा कठिनाई में पड़ गया। राज्य के सारे मूर्धन्य कलाकार आ गए। 'उनका एक भी चित्र पसन्द नहीं आया तो फिर तुम बनाओ'— राजा ने कहा। चित्रकार बोला, 'मैं बूढ़ा हो गया हूं, कैसे बनाऊं?' फिर भी यदि आप चाहते है तो मैं चित्र बनाऊंगा। पर मुझे तीन वर्ष का समय

चाहिए।' 'तीन वर्ष का समय?' राजा ने विस्मय के साथ पूछा। चित्रकार ने कहा, 'श्रेष्ठता साधन के बिना प्राप्त नहीं होती। तात्कालिकता कामचलाऊ हो सकती है, किन्तु वह श्रेष्ठता का सजृन नहीं कर सकती।'

चित्रकार तीन वर्ष की अवधि लेकर वहां से चला गया। छह मास बीत गये। चित्रकार कभी राजा से मिला नहीं। राजा ने उसके कार्य की जानकारी लेने के लिए अपने विश्वस्त कर्मचारी को भेजा। वह चित्रकार के घर गया। वह घर में नहीं मिला। खोजते–खोजते वह जंगल में गया। उसने देखा, वहां एक बाड़ा है। उसमें पचासों मुर्गे हैं। बुढ़ा चित्रकार मुर्गों के बीच में बैठा है। राजा के कर्मचारी ने पूछा, 'क्या चित्र बन गया?' बूढा बोला, 'चित्र बना रहा हूं।'

'कब तक बनेगा?'

'अभी ढाई वर्ष लगेंगे।'

ढाई वर्ष बीत गये। राजा ने फिर जांच करवाई। चित्रकार को बुलाकर कहा, 'चित्र लाओ।'

'चित्र अभी बना नही है।'

'तीन वर्ष बीत गये, फिर चित्र क्यों नहीं बना? अब तक क्या किया?'

'क्या किया, यह बताऊं?'

'मैं अवश्य जानना चाहूंगा।'

राजसभा में चारों और मुर्गे की आवाज होने लगी।

इधर–उधर मुर्गा दौड़ने लगा। सभासदों ने देखा, यह कैसा आदमी? यह तो मुर्गा है। वही भाषा, वही व्यवहार और वही आचरण। राजा ने कहा, 'यह क्या करते हो?'

'महाराज! तीन वर्षों में मैंने क्या किया, वह बता रहा हूं, मैं मुर्गा हो गया हूं।'

'मुझे तुम्हें मुर्गा नहीं बनाना है, मुझे मुर्गे का चित्र चाहिए।'

'मुर्गा बने बिना मुर्गे का चित्र नहीं बना सकता।'

'तो तुम मुर्गा बन गए? अब चित्र लाओ।'

'चित्र बनाने में क्या कठिनाई है! आधा घंटे का काम है। तूलिका लाओ, रंग लाओ, कागज लाओ, अभी चित्र तैयार कर देता हूं।'

सारी सामग्री लायी गयी और देखते–देखते चित्र तैयार हो गया।

राजा ने पूछा, 'क्या यह जीवन्त चित्र है?'

'महाराज! हां।'

'इसकी कसौटी क्या है? वे जीवन्त क्यों नहीं थे और यह जीवन्त क्यों है?'

चित्रकार ने मुर्गा मंगाया। पहले के चित्रों को रखा और उसके सामने मुर्गे को छोडा। मुर्गा चित्रों के सामने गया और मुंह फेरकर लौट आया। सबके बाद अपना चित्र रखा। उसे देखते ही मुर्गा सक्रिय हो गया। लड़ने की मुद्रा में आ गया। उसने चित्र के मुर्गे पर आक्रमण

कर दिया। चित्रकार बोला–

'महाराज ! यह जीवन्त चित्र है। मुर्गा मुर्गे से लड़ रहा है।'

'इतना जीवन्त चित्र है! इतनी जल्दी कैसे बनाया तुमने?' राजा ने पूछा।

चित्रकार ने कहा, 'महाराज! मैने तीन वर्ष का समय मुर्गा बनने में लगाया। अगर मैं मुर्गा नहीं बनता तो जीवन्त मुर्गा नहीं बना पाता।'

—o—

पुद्गल का स्वभाव

राजा जितशत्रु नगर के बाहर जा रहा था। मंत्री सुबुद्धि उसके साथ था। एक खाई आयी। उसमें जल भरा था। वह कूड़े–करकट से गंदा हो रहा था। उसमें मृत पशुओं के कलेवर सड़ रहे थे। दूर तक दुर्गन्ध फूट रही थी। राजा ने कपड़ा निकाला और नाक को दबा लिया। 'कितनी दुर्गन्ध आ रही है!' राजा ने मंत्री की ओर मुड़कर कहा। मंत्री तत्त्ववेत्ता था। उसने कहा, 'महाराज! यह पुद्गलों का स्वभाव है।' उसने राजा के भाव की तीव्रता को अपनी भावभंगी से मंद कर दिया। बात वहीं समाप्त हो गयी। कुछ दिनों बाद मंत्री ने राजा को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजन के मध्य राजा ने पानी पीया, अत्यन्त निर्मल, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त

सुगन्धित। राजा बोला, मंत्री! यह पानी तुम कहां से लाते हो? इच्छा होती है कि एक गिलास और पीऊं। मैं तुम्हें अभिन्न मानता हूं, किन्तु तुम मुझे वैसा नहीं मानते। तुम इतना अच्छा पानी पीते हो, मुझे कभी नहीं पिलाते।' मंत्री मुसकराया और बोला, 'महाराज! यह पानी उस खाई से लाता हूं जहां आपने नाक–भौं सिकोड़ी थीं और कपड़े से नाक ढंकी थी।' राजा ने कहा, 'यह नहीं हो सकता। यह पानी उसी खाई का कैसे हो सकता है?' मंत्री अपनी बात पर अटल रहा। राजा ने उसका प्रमाण चाहा। मंत्री ने उस खाई का पानी मंगवाया। राजा की देख–रेख में सारी प्रक्रिया चली और वह पानी वैसा ही निर्मल, मधुर और सुगन्धित हो गया जैसा राजा ने मंत्री के घर पिया था। केवल पानी ही क्या, हर वस्तु बदलती है।

—o—

मेरी सीमा

एक पक्षी कुएं की मेड़ पर आकर बैठा। कुएं में मेंढक था। मेंढक ने उस पक्षी को देखा और पूछा, कहां से आया है?' पक्षी ने उत्तर दिया, 'मानसरोवर से।' कितना बड़ा है तुम्हारा मानसरोवर?' मेंढक का अगला प्रश्न था। एक छलांग भरी– 'इतना बड़ा?' 'नहीं, और बड़ा।' फिर कूदा– 'क्या इतना बड़ा?' 'नहीं, और बहुत बड़ा।' मेंढक बोला– 'झूठ बोलता है। मेरे घर से बड़ा तुम्हारा

मानसरोवर नहीं हो सकता।' पक्षी ने सोचा– जब मूर्ख से पाला पड़े तो भाग जाना ही अच्छा है। वह उड़ गया 'जो नीचे रहने वाला होता है, जिसने कुएं के बाहर जाकर इस दुनिया को नहीं देखा, जिसने अपनी सीमा को तोड़कर विराट् सत्य को नहीं देखा, वह अहंकारी बन जाता है और यह समझता है जो मेरी रेखा है वहीं सत्य है। उसके सिवाय दुनिया मे कोई सत्य नहीं।'

—o—

तुम मान लो

एक नौकर था सेठानी के घर। एक बार कोई स्थिति आयी। रात का समय। काफी अंधेरा हो गया। सेठानी ने नौकर से कहा, 'घी ले आओ बाजार से।' नौकर ने कहा, 'कैसे जाऊं, डर लगता है, बाहर बहुत अंधेरा है। मुझे बहुत डर लगता है। मैं तो नहीं जा सकता। सेठानी ने कहा, 'अरे, डर कुछ भी नहीं होता। तुम मान लो, डर कुछ भी नहीं होता इस दुनिया में, तुझे डर नहीं लगेगा।' क्या करे बेचारा नौकर, विवश था। मालकिन का आदेश जो था। गया। दो–चार सीढ़िया ही उतरा होगा कि अंधेरा आ गया, डर लगा और वापस दौड़ आया। मालकिन के पास आकर बोला, 'तुम कुछ भी कहो, मुझे

तो डर लगाता है, मैं तो नहीं जा सकता।' मालकिन ने फिर समझाया। कहा, 'तुम बहुत भोले हो। दुनिया में डर नाम की कोई चीज नहीं होती, ऐसा मान लो।' बहुत दबाव दिया। आखिर नौकर था, फिर चला। पांच–दस कदम गया और फिर दौड़ आया। सेठानी ने फिर लंबा उपदेश दिया। उसने एक ही सूत्र पकड़ा दिया कि तुम मान लो, दुनिया में डर नाम की कोई चीज नहीं है। बेचारा बहुत परेशान था। नीचे गया और पांच–सात मिनट में वापस लौट आता। बर्तन भरा हुआ मालकिन के सामने रख दिया– 'लो तुम्हारा घी।' उसने देखा और कहा कि इतनी जल्दी कहां से ले आये? नौकर ने जवाब दिया, 'इससे तुम्हें क्या मतलब! ले आया, ले आया– देख लो।' ढक्कन उठाकर देखा तो पीला–पीला रंग। थोड़ा सूंघा तो बदबू आयी। चखा तो कड़वा। छिः छिः यह क्या ले आये?' 'कुछ भी नहीं, घी है।' 'यह घी नहीं है, यह तो मूत्र लगता है।' (वास्तव में वह नीचे खड़े एक गधे का मूत्र ही भरकर लाया था।) नौकर ने कहा, 'तुम मान लो यह घी है।' सेठानी ने कहा, 'जब घी नहीं तो मैं कैसे मान लूं यह घी है।' नौकर ने कहा, मुझे जब डर लगता है तो कैसे मान लूं कि डर नहीं है?'

—o—

आवरण हटा

एक राजकुमारी को संगीत की शिक्षा देनी थी। वीणा–वादन और संगीत के लिए राजकुमार उदयन का नाम सर्य की भांति चमक रहा था। राजा ने कूट–प्रयोग से उदयन को उपलब्ध कर दिया। राजा राजकुमारी को संगीत सिखाना चाहता था और दोनों को सम्पर्क से बचाना भी चाहता था। इसलिए दोनों के बीच में यवनिका बांध दी। दोनों के मनों में भी यवनिका बांधने की चेष्टा थी। उदयन से कहा गया, 'राजकुमारी अन्धी है, वह तुम्हारे सामने आने में सकुचाती है। अतः वह यवनिका के भीतर बैठेगी।' राजकुमारी से कहा गया, 'उदयन कोढ़ी है। वह तुम्हारे सामने बैठने में सकुचाता है। अतः वह यवनिका के बाहर बैठेगा।' शिक्षा का क्रम चालू हुआ और कई दिनों तक चलता रहा। एक दिन उदयन संगीत का अभ्यास करा रहा था। राजकुमारी बार–बार स्खलित हो रही थी। उदयन ने कई बार टोका, फिर भी राजकुमारी उसके स्वरों को पकड़ नहीं सकी। उदयन कुछ क्रुद्ध हो गया। उसने आवेश में कहा, 'जरा संभलकर चलो। कितनी बार बता दिया, फिर भी ध्यान नहीं देती हो। आखिर अंधी जो हो।' राजकुमारी के मन पर चोट लगी। वह बौखला उठी। उसने जो आवेश में कहा, 'कोढ़ी! जरा संभलकर बोलो!' उदयन ने सोचा, 'कोढ़ी

कौन है? मैं तो कोढ़ी नहीं हूं। फिर राजकुमारी ने कोढ़ी कैसे कहा?' राजकुमारी ने भी इसी भाषा में सोचा, 'मैं तो अंधी नहीं हूं। फिर उदयन ने अंधी कैसे कहा?' सचाई को जानने के लिए दोनों तड़फ उठे। यवनिका हटाकर देखा, कोई अन्धी नहीं है और कोई कोढ़ी नहीं है। बीच का आवरण यह धारणा बनाये हुए था कि यवनिका के इस पार अन्धापन और उस पार कोढ़। आवरण हटा और दोनों बातें हट गयी।

—o—

स्टोर खाली हो जाये

एक बार जयप्रकाश नारायण और उनके मित्र उत्तर प्रदेश की यात्रा पर जा रहे थे। कई स्थानों पर लोग बैठे हास्य और बातें कर रहे थे। थोड़ी देर बाद जापानी मित्र ने कहा— जे० पी०! तुम्हारा भारत तो बड़ा समृद्ध लगता है। जयप्रकाश ने कहा— इतना व्यंग्य क्यो करते हो? यहां तो टूटी—फूटी झोंपड़िया हैं, फटे कपड़े और नंगे बदन बाले आदमी हैं। देखने से ही गरीब लगते हैं।

जापानी मित्र ने कहा— देखो, ये कितने लोग खाली हाथ बैठे हैं। जापान में कोई भी निकम्मा नहीं मिलेगा। निकम्मापन समृद्ध देश में ही हो सकता है। एक और

गरीबी है, खाने को नहीं है, फिर भी खाली बैठे बातें करते हैं। जापान में जनरल स्टोर में चले जाइए। जो वस्तु पसन्द आए, उसको बता दीजिए। वह आपको दे देगा। वह चेक नहीं करेगा कि कितनी वस्तु आपने ली है और कितनी बता रहे हैं। भारत में यदि ऐसे न पूछें तो चार दिन में स्टोर खाली हो जाए।

—o—

चौकीदारी

राजा बहुत खर्च करने लगा। खजाने में से बहुत बांटने लगा। खजांची आया और बोला— महाराज! आपके पुरखों का इकट्ठा किया हुआ खजाना इस प्रकार आप खर्च करेंगे तो खाली हो जाएगा। यह आप कैसे करते हैं? राजा बोला— किसे कह रहे हो? क्या मैं चौकीदार हूं? रखवाली करना चौकीदार का काम है। मैं चौकीदारी के लिए पैदा नहीं हुआ हूं। रखवाली करना मेरा काम नहीं है। मेरा काम है— बढ़ाना। खजाना खाली होगा तो फिर बढ़ेगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। यह चौकीदारी मुझसे नहीं हो सकती।

—o—

मित्रो से परामर्श

आंख का एक बीमार व्यक्ति वैद्य के पास गया। उसकी आंखों में मोतिया हो गया। वैद्य ने 'कारी' की। आंख ठीक हो गयी। उसे दीखने भी लग गया। एक दिन वैद्य आया। उससे कहा, 'अब तुम्हारी आंखें ठीक हो गयी हैं। तुम चलते–फिरते हो। तुम्हें दीखने भी लगा है। मेरी फीस चुकाओ।' उस व्यक्ति ने कहा, 'मैं ऐसे नहीं मानता। पहले मैं अपने मित्रों से परामर्श करूंगा। उनसे पूछूंगा कि मुझे दीखने लगा है या नहीं। यदि वे कहेंगे कि दीखने लग गया है तो मैं तुम्हारी फीस चुकाऊंगा, यदि वे कहेंगे कि दीखने नहीं लगा तो एक पैसा भी नहीं दूंगा।'

—o—

स्वधर्म : राजधर्म

सेनापति था जैन। राजा कहीं बाहर गया हुआ था और पीछे से शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया। अब सेनापति अपनी सेना लेकर युद्ध के मैदान में गया। कल से लड़ाई शुरू होने वाली है। संयोग ऐसा मिला कि क्षमावाणी का दिन आ गया। सेनापति जैन था। बड़ा श्रावक था। धर्म का जानकार था। सायंकाल वह प्रतिक्रमण करने बैठ गया। प्रतिक्रमण शुरू किया। उसने प्रतिक्रमण पढ़ा–एइंदिया, वेइंदिया, तेइंदिया, आदि

एकेन्द्रिय की हिंसा की हो तो मिच्छामि दुक्कड़म आदि–आदि। पास में सहायक सेनापति और सैनिक सुन रहे थे। उन्होंने सोचा कि जो कहता है कि चींटी–मकोड़ों को मारा हो तो मिच्छामि दुकक्ड़म, वह हमें क्या निहाल करेगा यहां? वे सब घबरा गये। वे रानी के पास पहुंचे। उन्होंने कहा, 'महारानी! इस सेनापति के भरोसे कल हमे पराजय का मुह देखना पड़ेगा, क्योंकि वह सेनापति हिंसा से घबराता है।' रानी ने सेनापति को बुलाया। बुलाकर पूछा' 'तुम जीवों को मारने से डरते हो तो शत्रुओं को कैसे मारोगे?' सेनापति ने कहा, 'मैं जैन धर्म को मानने वाला हूं। मैं महावीर का अनुयायी हूं। महावीर का यह आदेश है कि बिना मतलब एक चींटी को भी मत मारो, मत सताओ। अहिंसा का पालन करो, करुणा करो, अनुकम्पा करो– यह मेरा स्वधर्म है। किन्तु लड़ना मेरा राज्य–धर्म है। दोनों अपने–अपने स्थान पर हैं। कोई शत्रु मुझ पर आक्रमण करता है तो मैं अपनी सुरक्षा के लिए स्वतंत्र हूं। आप चिन्ता न करें। निश्चिन्त रहें। कल जो होगा, वह सामने आ जायेगा। युद्ध का मैदान बतायेगा कि एक जैन सेनापति कितने पराक्रम से लड़ सकता है।' रानी को विश्वास था पहले से ही। सूर्योदय हुआ, लड़ाई शुरू हुई। सेनापति पूर्ण पराक्रम से लड़ा सेनापति का साहस देख योद्धाओं का शौर्य दुगुना हो गया। भयंकर युद्ध हुआ। शत्रु पराजित हो पहले ही दिन भाग खड़ा हुआ।

पसीना सुखाओं

विद्यार्थी स्कूल से आया। कड़ी धूप थी। कपडे तर–बतर हो गये। घर पहुंचा और धूप में आकर खड़ा हो गया। मां ने कहा, 'बेटा! क्या कर रहे हो? पसीना सुखाओ, छाया में आ जाओ।' वह बोला, 'मां! पसीना ही सुखा रहा हूं।' मां ने कहा, 'इतनी कड़ी धूप में पसीना कैसे सूखेगा?' वह बोला, 'मां, जब कपड़ा गीला होता है, तुम धूप में सुखाती हो या नहीं? जब कपड़ा धूप में सूख सकता है तो पसीना क्यों नहीं सूखेगा?'

—o—

आज पूर्णिमा

एक शिष्य भिक्षा के लिए गया। एक बहन ने पूछा, 'महाराज! आज तिथी क्या है?' शिष्य भोला था। उसने कहा, 'आज पूर्णिमा है।' बहन बोली, 'महाराज! आज तो अमावस्या होनी चाहिए, पूर्णिमा कैसे?' शिष्य बोला, 'कुछ भी हो। आज पूनम ही है।' वह स्थान पर आया। गुरु से बोला, 'आज है तो अमावस्या, पर मैंने कह दिया आज पूर्णिमा है। अब मेरी लाज आपके हाथ में है। मै झूठा न पड़ जाऊं।' आचार्य बोले, 'ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए। अच्छा जाओ कह दो कि आज पूर्णिमा है और रात को आकाश में पूरा चांद दीखेगा।' आचार्य ने

मंत्र–बल से अमावस्या की घोर अंधेरी रात में भी चांद उगा दिया। वह शक्ति जागरण का परिणाम है।

—o—

तर्कबाज

कोल्हू का बैल चल रहा था। एक वकील आया। वह कोल्हू के स्वामी के पास बैठा। उसने देखा कि स्वामी चुपचाप बैठा है और कोल्हू का बैल स्वतः घूम रहा है। कुछ क्षणों बाद वह बोला, 'बैल के गले में फंदा क्यों बांध रखा है?'

स्वामी बोला, 'कहीं भाग न जाये, इसलिए।'

'इसकी आंखों पर पट्टी क्यों बांधी है?'

'इसे यह पता न चले कि मैं एक परिधि में घूम रहा हूं, अन्यथा यह रुक जायेगा।'

'इसके गले में घंटी क्यों है?'

'गले की घंटी बजती है तो पता चल जाता है कि यह घूम रहा है। घंटी बंद होती है तो उसके रुकने का आभास हो जाता है।'

'अच्छा किन्तु यह बैल खड़ा–खड़ा भी घंटी बजा सकता है और तुमको भ्रम में डाल सकता है।'

'नहीं, बैल आदमी जितना तर्कबाज नहीं है। उसने तर्कशास्त्र नहीं पढ़ा है।'

पता ही नहीं लगता

राजा ने अपने गुरु से कहा, 'गुरुदेव! एक दिन आपने कहा था कि देवता हजारों-लाखों करोड़ों वर्ष बीत जाते हैं। क्या वे बैठे-बैठे थक नहीं जाते? उनके लम्बे आयुष्य की बात बुद्धिगम्य नही होती।'

आचार्य बाग्वली थे। उन्हें वचोलब्धि उपलब्ध थी। वे क्षीरास्तवलब्धि के धनी थे। इस लब्धि के योग से उनकी वाणी का मिठास बहुत बढ़ गया था। वे बोले, 'राजन्! मैं तुम्हारे प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करूंगा। पहले तुम कुछ समय के लिए प्रवचन सुनो।' आचार्य ने प्रवचन प्रारम्भ किया। सारी सभा तन्मय होकर प्रवचन सुनने लगी। समय बीतता गया। किसी को पता नहीं चला। आचार्य की वाणी से मानो मिठास झर रहा था। सभी उसके पान में निमग्न थे। एक प्रहर काल बीता। आचार्य ने प्रवचन समपन्न किया। आचार्य ने पूछा, 'राजन्! कितनी देर से प्रवचन सुन रहे हो? बहुत विलम्ब हो गया है।' राजा बोला, 'गुरुदेव! यह क्या? अभी दो क्षण पूर्व ही तो अपने प्रारम्भ किया था, बिलम्ब कहां हुआ है? आपने प्रवचन को इतनी जल्दी कैसे सम्पन्न कर डाला? आचार्य बोले, 'राजन्! मैंने एक प्रहर तक प्रवचन दिया है, किन्तु उसमें तुमको इतना रस आ गया कि तीन घंटे का काल दो क्षण जितना लगा। इसी प्रकार देवता

इतने आनन्द में रहते हैं कि उन्हें हजारों-लाखों वर्षों के बीतने का पता ही नहीं लगता।' राजा को बात समझ में आ गयी।

—o—

शराब का नशा

आदमी शराब पीने मदिरालय में गया। शराब पीने के बाद नशे में चूर हो गया। लालटेन लेकर आया था। लालटेन लेकर चला। अंधेरी रात थी। रास्ता नहीं दिखायी दे रहा था। बोला, 'देखो कैसा घोर कलिकाल आ रहा है कि लालटेन ने प्रकाश देना बंद कर दिया है।' थोड़ा आगे चला। गड्ढा आया। गड्ढें में गिर गया। अंधेरा और नशे में चूर। लालटेन ने प्रकाश देना बंद कर दिया गालियां दी। लड़खड़ाता हुआ घर पहुंचा। सो गया। सुबह उठा। कुल्ला कर रहा था तब मदिरालय का बैरा आया। उसने एक चिट हाथों में पकड़ा दी। उसमें लिखा था, 'महाशय ! कल रात आप हमारे मदिरालय में शराब पीने आये थे। आप जाने लगे तो अपनी लालटेन छोड़ गए एवं हमारे तोते का पिंजड़ा ले गये। कृपया वह पिंजरा लौटा दीजिए। यह अपनी लालटेन सम्हाल लें।'

क्या तोते का पिंजड़ा भी प्रकाश करेगा? जो प्रकाश

का साधन नहीं, वह प्रकाश कैसे करेगा? जो शुद्ध साधन नहीं, जो सचमुच धर्म नहीं वह कल्याण कैसे करेगा?

—o—

मतलब

मेरे पास एक मित्र आए और बोले, 'महाराज! मेरा लड़का धर्म नहीं करता। आप जरा समझाइए।' मैंने कहा, आएगा तो समझाऊंगा।' शाम को लड़का आया। मैंने पूछा, 'धर्म को क्यों नहीं मानते हो? यहां क्यों नहीं आते?' उस लड़के ने कहा, 'मैं एकान्त में बताऊंगा।' पिता उठकर बाहर चला गया तब उस लड़के ने बताया कि मेरे माता–पिता आठ बार महाराज के जाते हैं, फिर भी दिन भर लड़ाई करते रहते हैं। अगर लड़ाई ही करनी हैं तो महाराज के आने की क्या आवश्यकता? जिस धर्म से मेरे माता–पिता ने कुछ नहीं पाया, कुछ नहीं सीखा, वैसे धर्म से मतलब क्या है?

—o—

रक्स चाइल्ड

रक्स चाइल्ड एक अमीर अमेरिकन था। वह निरन्तर वातानुकुलित में रहता। मकान, कार्यालय, कार– सब वातानुकूलित, वातानुकूलन के अतिरिक्त कोई विकल्प

नहीं था। स्थिति यह हो गयी कि वह बहुत नर्वस हो गया। नाड़ी–संस्थान बहुत कमजोर हो गया और वह वेचैन रहने लगा। डॉक्टर से परामर्श किया। डॉक्टर ने कहा, 'आप प्रतिदिन दो घंटा गर्म पानी के टब में बैठे रहें।' रक्स चाइल्ड ने वैसा ही किया। दो–चार दिन बीते। उसे यह विधि अच्छी लगी। उसने सोचा– 'कितनी मूर्खतापूर्ण बात है। मैं पूरे दिन वातानुकूलित स्थिति में रहता हूं और फिर वेचैनी मिटाने के लिए दो घंटा गर्म पानी के टब में बैठा रहता हूं। इससे अच्छा तो यह है कि बेचैनी पैदा करने वाली वातानुकूलित स्थिति को ही छोड़ दूं।' उसने अपना क्रम बदला। धीरे–धीरे प्रकृति में आ गया। स्थिति बदल गयी। अब उसके बेचैनी नहीं रही।

—o—

मैं क्या बताऊं

जुंग बहुत विख्यात मनोचिकित्सक हुए हैं। एक बार वे बीमार हो गये। डॉक्टर के पास गये। डॉक्टर ने कहा– 'लेट आजो।' जुंग लेट गये। डॉक्टर ने कहा– 'अब तुम अपने भीतर देखने का प्रयत्न करो। और अधिक गहराई में देखो। उस समय जो विकल्प उत्पन्न हों, वे मुझे कहते रहो।' जुंग ने वैसा ही किया। ज्यों–ज्यों भीतर की गहराई में उतरते गये, विकल्प गायब होते गये। विकल्पों

का उत्पन्न होना बंद हो गया। जुंग ने कहा, 'डाक्टर! अन्दर देखने पर कोई विकल्प आता ही नहीं। मैं क्या बताऊं?'

विकल्प या विचार तब उत्पन्न होते हैं, जब हम बाहर ही बाहर देखते हैं।

—o—

लाद दिया

पिता ने अपनी लड़की की शादी की। लड़की बड़ी खूंखार और तेज–तर्रार थी। बड़ा भार अनुभव हो रहा था। शादी करते ही पिता से रहा नहीं गया। बोला– चलो, आज एक बहुत बड़े भार से मुक्त हुआ। दामाद पास में ही खड़ा था। उसने सुना और कहा– आप तो भार से मुक्त हुए लेकिन वह भार आपने मुझ पर लाद दिया।

—o—

दाढ़ी में आग

एक बादशाह था। उसको एक नौकर की जरूरत थी। परीक्षण के लिए अनेक लोगों को बुलाया। आदमी रखना था जो परीक्षण जरूरी था। क्योंकि आदमी बहुत काम देने वाला होता है तो आदमी बहुत खतरनाक भी

होता है। कोई खतरनाक आदमी न आ जाए इसके लिए परीक्षा जरूरी थी। उपस्थित लोगों में से बादशाह ने तीनों व्यक्तियों को सामने खड़ा कर कहा– बताओ, इत्तफाक से मेरी दाढ़ी में और तुम्हारी दाढ़ी में एक साथ आग लग जाए तो तुम क्या करोगे? पहला तत्काल बोल उठा– 'हूजूर! आपकी दाढ़ी की आग तत्काल बुझा दूंगा। अपनी दाढ़ी की आग की चिंता ही नहीं करूंगा।' दूसरा बोला– 'जहांपनाह! पहले मैं अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा और फिर आपकी दाढ़ी की चिन्ता करूंगा।' तीसरा बोला– 'हुजूर! एक हाथ से आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा और दूसरे हाथ से अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।'

बादशाह ने तीनों व्यक्तियों के उत्तर सुनकर कहा– 'पहला आदमी अव्यावहारिक है। दुनिया में ऐसा कोई भी आदमी नहीं होता जो कठिन समय आने पर अपनी बात न सोचकर दूसरे की बात सोचता हो। अपनी हित–चिन्ता न कर दूसरे की हित–चिन्ता करता हो। वह व्यक्ति सर्वथा अव्यावहारिक है। जो व्यक्ति अव्यावहारिक बात कहता है, वह हमेशा धोखा देता है। अज्ञानी व्यक्ति सदा अव्यावहारिक बात करता है। वह ऐसी बात करता है कि सामने वाले को लुभा लेता है, किन्तु उसे धोखा देता है।

'दूसरा आदमी स्वार्थी है। स्वार्थी आदमी किसी का भला नहीं करता। वह खुदगर्ज होता है। वह सदा अपनी

ही बात सोचता है, अपना ही भला करता है। दूसरे की बात को वह सोच ही नहीं सकता। वह आदमी भी खतरनाक होता है।

'तीसरा आदमी व्यावहारिक है। वह व्यवहार की बात करता है, सचाई की बात करता है। वह न अव्यावहारिक है और न स्वार्थी। वह व्यवहार के धरातल पर जीता है।'

बादशाह ने उस तीसरे व्यक्ति को नौकरी दे दी। दोनों को विदा कर दिया।

—o—

जरूरत

पिता ने कहा– बेटा! बाजार में जाओ और भूसा ले आओ। वह बोला– पिताजी! बाजार में जाने की क्या जरूरत है? स्कूल में मास्टरजी कह रहे थे कि तुम्हारे दिमाग में भूसा भरा है। पिताजी! आप उसी को काम में ले लों। बाहर से क्यों मंगा रहे हैं?

—o—

जज : अपराधी

जज ने अपराधी से कहा, 'तुम न्यायालय में खड़े हो। सच–सच कहना, झूठ मत कहना। अच्छा बताओ, झूठ बोलने से कहां जाओगे और सच बोलने से कहां

जाओगे?'

'जज साहब! जानता हूं। झूठ बोलने से नरक में जाऊंगा और सच बोलने से जेल में जाऊंगा।'

—o—

कोरा कागज

चित्रकारिता की परीक्षा हो रही थी। दस–दस, बारह–बारह वर्ष के बच्चे परीक्षार्थी थे। उनको तीन चित्र बनाने थे– एक चूहे का, दूसरा बिल्ली का और तीसरा कुत्ते का। विद्यार्थी ने तन्मयता के साथ चित्र बनाये। उनमें रंग भरे। परीक्षा का समय समाप्त हुआ। चित्रकार अध्यापक एक–एक विद्यार्थी के चित्रों का परीक्षण कर उनको नम्बर दे रहा था। एक विद्यार्थी ने कोरा कागज अध्यापक के हाथ में दे दिया। अध्यापक ने चिढ़ते हुए कहा– 'यह क्या! अभी तक एक भी चित्र नहीं बना पाए?'

विद्यार्थी बोला– 'मैंने तीनों चित्र बनाये हैं।'

'कहाँ है चित्र? पन्ना खाली पड़ा है'– अध्यापक ने कहा।

विद्यार्थी बोला– 'चूहा बनाया था किन्तु उसे बिल्ली खा गई।'

'अरे, बिल्ली कहा है?'

'कुत्ता बिल्ली को खा गया।'

'अच्छा, तो बताओ, कुत्ता कहां गया?'

'एक बिल्ली से उसका पेट नहीं भरा तो दूसरी बिल्ली की खोज में चला गया। तीनों चले गये। मेरा कागज कोरा ही रह गया।

—o—

राजा और संन्यासी

एक राजा था। उसने बहुत बड़ा महल बनवाया। वह भव्य, रमणीय और सुविधाजनक था। सब लोग आते, देखते और प्रशंसा करते। राजा उस प्रशंसा से तृप्त नहीं हुआ। प्रशंसा का मूल्य है किन्तु उससे भी अधिक मूल्य इस बात का है कि प्रशंसक कौन है? साधारण व्यक्ति की प्रशंसा का उतना मूल्य नहीं होता, जितना कि उस व्यक्ति का होता है, जो वस्तुतः प्रशंसा करने में कृपण होता है या जिसकी प्रशंसा सहज निकलती नहीं। उस नगर में एक तत्वज्ञानी मनुष्य रहता था। राजा ने सोचा, 'जब तब वह प्रशंसा नहीं करेगा तब तक दूसरों की प्रशंसा का कोई मूल्य नही होगा।' राजा ने उसे निमंत्रित किया। वह आ गया। राजा ने कहा, 'देखो, कितना सुन्दर प्रासाद है। कितना भव्य! कितना सुविधाजनक! आप क्या इसमें कोई कमी देखते हैं?' वह मुसकराया। उसने धीमे स्वर में कहा, 'इस दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं होती, जिसमें कोई कमी न हो। कुछ भी पूर्ण हो नहीं सकता।

हमारी अपूर्णता की दुनिया में कुछ भी पूर्ण नहीं होता। आप मुझे फिर क्यों पूछते हो?' राजा ने आग्रह किया। तब तत्त्वज्ञानी ने कहा, 'यदि आप जानना ही चाहते हैं तो मैं बताऊंगा। मुझे इसमें दो कमियां दिखाई देती हैं। एक कमी तो यह है कि एक दिन यह प्रासाद नष्ट हो जाएगा और दूसरी कमी यह कि इसको बनाने वाला भी नष्ट हो जाएगा।'

—o—

यमराज

एक बूढ़ा आदमी जा रहा था। उसके सिर पर एक गट्ठर था। बोझ अधिक था, बूढ़ परेशान था, वह थक गया। उसने सोचा, 'देखो, मौत भी नहीं आती। यमराज मुझे भूल ही गया। कितना अच्छा हो, यदि अभी मौत आकर मुझे उठा ले। यमराज आकर मुझे ले जाए।' योग ऐसा मिला कि यम स्वयं आ गया। इधर बूढ़े का एक सहायक भी आ पहुंचा। उसने आते ही गट्ठर उठाकर अपने सिर पर रख लिया। यम ने पूछा, 'बोलो, मुझे क्यों याद किया?' अब बूढ़े का विचार बदल गया था। वह हल्का हो गया था। कष्ट में जो विचार था वह जैसे ही आराम मिला, सुख मिला, बदल गया। यम ने कहा, 'जल्दी बताओ, तुमने मुझे क्यों याद किया है?' बूढ़े ने कहा, 'क्षमा करें, मैं गट्ठर के भार से दवा जा रहा था।

उसे उठाने के लिए आपको याद किया था। अब मेरा सहयोगी आ गया है। उसने गट्ठर उठा लिया है। अब आप चले जाइये। आपकी आवश्यकता नहीं है।'

—o—

देखादेखी

संस्कृत का बहुत बड़ा कवि माघ एक बार स्नान करने के लिए नदी पर गया। लोटा था पास में। सोचा— कल फिर आना है। चलो, इसे कहीं रेत के टीले में गाड़ दें, कल काम आ जाएगा। ऐसा किया। किसी ने देख लिया। लोगों ने सोचा, इतना बड़ा कवि है। लोटे को गाड़ रहा है, अवश्य कोई अर्थ है। दूसरे लोग जो नदी पर आये हुए थे, उन्होंने माघ का अनुकरण किया और स्थान–स्थान पर अपने लोटे नदी में गाड़ दिये। दूसरे दिन माघ आया। उसने अपने लोटे का स्थान ढूंढना चाहा। किन्तु वह उसे ढूंढ नहीं सका, क्योंकि पचासों स्थान एक–से बन गये थे। वह हताश होकर बोला—

गतानुगतिको लोकः, न लोकः परमार्थिकः।
गंगाया बालुकामध्ये, गतं से ताम्रभाजनम्।।

'लोग गतानुगतिक होते हैं। पीछे चलने वाले होते हैं। इनके अनुकरण ने मेरा लोटा और गंवा दिया।'

—o—

घृणा और प्रेम

सन्त राबिया के घर एक फकीर आया। उसने मेज के पास पड़ी पुस्तक को देखा। उसके पन्ने उलटने शुरू किये। एक पन्ने में लिखा था— 'शैतान से नफरत करो।' राबिया ने उसे काट दिया। फकीर बोला— 'यह क्या? इस पवित्र पुस्तक का वाक्य किसने काटा?' सन्त राबिया ने कहा, 'यह मैंने काटा है।' फकीर ने पूछा, 'क्यों?' राबिया ने कहा, 'अच्छा नहीं लगा।'

'यह कैसे हो सकता है कि पवित्र पुस्तक की बात अच्छी न लगे? क्या यह सही नहीं है?' फकीर ने पूछा। सन्त राबिया ने कहा, 'एक दिन मुझे भी सही लगता था, किन्तु आज लगता है कि सही नहीं है।

'वह कैसे?' फकीर ने पूछा।

सन्त राबिया ने कहा, 'जब तक मेरा प्रेम जागृत नहीं था, मेरी प्रेम की आंख खुली नहीं थी, मुझे भी लगता था कि शैतान से नफरत करो, प्यार नहीं, यह वाक्य बहुत सही है। किन्तु अब मैं क्या करूं? मेरी प्रेम की आंख खुल गई है। अब घृणा करने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं बचा है। मैं घृणा कर ही नहीं सकती। प्रेम की आंख यह भेद करना नहीं जानती कि इसके साथ प्रेम करो और इसके साथ घृणा।'

—o—

तुम मूर्ख हो

एक युवक बोधिधर्म के पास गया। वे बहुत बड़े साधक थे। युवक ने पूछा, 'भन्ते! मैं कौन हूं?' बोधिधर्म ने एक चांटा मारा और भर्त्सना के स्वर में कहा, 'चले जाओ, मूर्ख!' युवक विस्मय में डूब गया। इतना बड़ा साधक, इतना बड़ा ज्ञानी और मैंने छोटा-सा प्रश्न पूछा तो उसका उत्तर मिला चांटा। वह दूसरे साधक के पास जाकर बोला, 'भन्ते!' मैंने बोधिधर्म से पूछा कि मैं कौन हूं। उन्होंने उत्तर नहीं दिया, मुझे चांटा मारा।' साधक ने कहा, 'बोधिधर्म ने तुम्हें चांटा मारा और यदि वही प्रश्न मुझसे पूछते तो मैं डंडा मारता।' वह कुछ समझ नहीं पाया। उसने कहा, 'भन्ते! मैंने आपसे प्रश्न पूछा था। आपने उसका उत्तर नहीं दिया और चांटा मारा। क्या उत्तर देने का यह भी कोई तरीका है? भन्ते! आपने यह क्या किया?' बोधिधर्म ने कहा, 'इस प्रश्न को मत छेड़ो। यदि छेड़ोगें तो कल चांटा पड़ा था और आज आज कुछ और पड़ सकता है।' युवक घबरा गया। वह भर्राये स्वर में बोला, 'भन्ते! तो मैं क्या करूं?' बोधिधर्म बोले, 'तुम मूर्ख हो।' 'मैं मूर्ख कैसे?' युवक ने पूछा। बोधिधर्म ने कहा, 'जो बात अपने से पूछनी चाहिए, यह बात तुम दूसरे से पूछ रहे हो, इसलिए तुम मूर्ख हो। जाओ, यह प्रश्न अपने आप से पूछो कि मैं कौन हूं?' बात समाप्त हो गयी। युवक को समाधान मिल गया। ●●●

नीयत का असर

एक राजा जंगल में भटक गया। प्यास से आकुल-व्याकुल होकर वह इधर-उधर घूमने लगा। उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। वह वहां पहुंचा। वहां एक बूढ़ा आदमी बैठा था। पास ही ईख का खेत था। राजा ने पानी मांगा। बूढे ने दो-चार ईख तोड़े, कोल्हू में उन्हें पेरा। ईख के रस से एक कटोरा भर गया। राजा ने वह पीया और उसका मन पुलकित हो गया। उसने बूढ़े से पूछा, 'क्या ईख पर 'कर' भी लगता है?' बूढे ने कहा, 'नहीं। हमारा राजा दयालु है। वह भला हमसे क्या 'कर' लेगा?' राजा ने मन ही मन सोचा, ऐसी मीठी चीज पर अवश्य 'कर' लगना चाहिए। मन में संकल्प-विकल्प उठने लगे। आखिर 'कर' लगाने का निश्चय कर लिया। राजा ने चलते-चलते बूढ़े से कहा, 'एक प्याला रस और पिलाओ।' बूढ़े ने फिर दो-चार ईख तोड़े। उन्हें कोल्हू में पेरा। पर रस से कटोरा नहीं भरा। राजा अचम्भे में पड़ गया। उसने पूछा, 'यह क्या? पहले ईख के रस से कटोरा भर गया था, अब नहीं भरा, यह क्यों? बूढ़ा दूरदर्शी था। उसने कहा, 'लगता है मेरे राजा की नीयत बिगड़ गई, अन्यथा ऐसा नहीं होता।' राजा मन-ही-मन पछताने लगा।

राजा की नीयत का इतना असर होता है। क्या

अधिकारियों और मंत्रियों के चरित्र का प्रभाव समाज पर नहीं पड़ता? क्या अग्रणी व्यक्तियों के आचरण का असर समाज पर नहीं होता? होता है, अवश्य ही होता है। हमे इसे व्यक्तिगत मामला कहकर नहीं टाल सकते। जहां इस प्रश्न को टाल देते हैं वहां नाना प्रकार की विकृतियां पैदा हो जाती हैं, अन्याय करने की खुली छूट मिल जाती है।

—o—

आना और जाना

बंगाल प्रान्त में भूपेश सेन रहता था। वह बंगाली गृहस्थ था। बहुत बड़ा भक्त था। इतना बड़ा भक्त था कि जब वह भक्ति में बैठता तब तन्मय हो जाता। बाहरी दुनिया से उसका सम्बंध टूट जाता। एक दिन वह भक्ति में बैठा और तन्मय हो गया। बाहर का भान समाप्त हो गया। अन्तर में पूरा जागृत किन्तु बाहर से सुप्त। एक व्यक्ति आया और चिल्लाया, 'भूपेश! क्या कर रहे हो? उठो और संभलो।' वह व्यक्ति बहुत जोर से चिल्लाया, 'भूपेश! क्या कर रहे हो? उठो और संभलो।' वह व्यक्ति बहुत जोर से चिल्लाया, किन्तु भूपेश को कोई पता नहीं चला। उसने भूपेश का हाथ पकड़ झकझोरा, तब भूपेश ने आंखें खोलीं और कहा, 'कहिये, क्या बात है?

आगन्तुक बोला, 'मुझे पूछते हो क्या बात है? यहां आंखें मूंदे बैठे हो। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारे इकलौते बेटे को सांप काट गया और वह तत्काल ही मर गया।' भूपेश ने कहा, 'जो होना था सो हुआ' आगन्तुक बोला, 'अरे! तुम कैसे पिता? मैने तो दुःख का संवाद सुनाया और तुम वैसे ही बैठे हो? लगता है कि पुत्र से तुम्हें प्यार नहीं है। तुम्हें शोक क्यों नहीं हुआ? तुम्हें चिन्ता क्यों नहीं हुई? तुम्हें दुःख क्यों नहीं हुआ? तुम्हारी आंखों में दो आंसू क्यों नहीं छलक पडे? भूपेश ने कहा, 'जिस दिन बेटा आया था तो मुझे पूछकर नहीं आया था और आज वह लौट गया तो मुझे पूछकर नहीं लौटा। उस दिन मैंने कुछ नहीं किया था। आज भी मुझे कुछ नहीं करना है। यह जन्म और मरण की अनिवार्य शृंखला है, जिसमें मेरा हाथ नहीं है। मनुष्य आता है, चला जाता है। तुम्हें इतनी क्या चिन्ता है?'

आगन्तुक चुप हो गया। उसके पास बोलने के लिए कुछ नहीं बचा। कुछ क्षण रुककर वह बोला, 'अब उसकी चिता जलानी है, साथ चलो।' भूपेश उसके साथ गया। पुत्र की अर्थी श्मशान में पहुंची। चिता में पुत्र को सुला, आग लगाकर कहा, बेटे, 'बेटे, तुम जिस घर से आये थे, उसी घर में जा रहे हो। आज से हमारा सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है।'

—o—

गधे का घोड़ा

एक धोबी का गधा चला जा रहा था। पीठ पर कपड़ों का गट्ठर था। एक आदमी ने पूछा, 'अरे गधे! इतना भार क्यों ढोते हो? तुम्हें खाना भी अच्छा नहीं मिलता, थोड़ी–बहुत सूखी घास मिल जाती है। ऐसी बेवकुफी क्यों करते हो? मेरा कहा मानो और राजा की घुड़साल में चले जाओ। वहां जाकर मजे से रहना। वहां कोई काम नहीं करना पड़ेगा।' गधा बोला, 'तुम्हारा कथन लुभावना है, किन्तु राजा की घुड़साल में मेरा प्रवेश कैसे होगा? यदि चला भी जाऊंगा तो मुझे मारपीटकर लोग निकाल देंगे।' आदमी बोला, 'इसकी चिन्ता मत करो। तुमको वहां से कोई नहीं भगाएगा। क्योंकि वहां के सभी अधिकारी यह मानकर चलते हैं कि जिसके पूंछ होती है वह घोड़ा होता है। तुम चले आजो और सूखपूर्वक जीवन बिताओ। गधा बोला, 'अधिकारी तो मान लेंगे, किन्तु राजा इसको कैसे मानेगा? एक गधे को घोड़ा कैसे मानेगा?' आदमी ने कहा, 'चिन्ता मत करो। राजा स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं सोचता। वह वहीं मानता है जो अधिकारी कहते हैं। अधिकारी यदि गधे को घोड़ा कह देंगे तो राजा गधे को घोड़ा मान लेगा। तुम वेफिक्र रहे।' गधा बोला, 'अरे! इतना तो ठीक है, किन्तु दूसरे नागरिक इसे कैसे स्वीकार करेंगे?' आदमी बोला, 'इस राष्ट्र के

सारे लोग तटस्थ हैं, उदासीन हैं। वे यह मानते है कि हमें क्या, कोई कुछ भी माने।'

आज की राजनीति ने इस तटस्था को जन्म दिया है। इससे अनेक विकृतियां पैदा हुई हैं। समाज का बहुत बड़ा भाग राजनीति में भाग नहीं लेता, तटस्थ रहता है, कोई चिन्ता नहीं करता। यदि सब चिन्ता करने लग जाएं तो जो स्थिति चल रही है, वह चल नहीं सकती। उसमें अनिवार्यतः परिवर्तन आ जाता है। किन्तु सब उदासीन हैं और यही कहते हैं, 'हमें क्या! जो कुछ हो, होने दो। हम क्यों चिन्ता करें?' आदमी इसका परिणाम भी भुगत लेता है, पर उदासीनता नहीं तोड़ता।

—o—

बातों से प्रसन्न

एक कवि किसी सेठ के पास गया। सेठ की काफी प्रशंसा की। सेठ ने खुश होकर कहा, 'मेरे पास रुपये नहीं हैं। अनाज का भंडार भरा हुआ है। तुम कल आना। मैं तुम्हें अन्न के भंडार में से कुछ आनाज दे दूंगा।' कवि भी प्रसन्न होकर चला गया। दूसरे दिन सबेरे–सबेरे कवि सेठ के घर आया। कवि को देखकर सेठ बोला, 'इतने सबेरे आ गए, कैसे आए?' कवि ने कहा, 'आपने कल कहा था कि अभी मेरे पास कुछ नहीं है, कल आना, मैं अन्न–भंडार से आनाज दूंगा। इसीलिए आया हूं।' सेठ

बोला, 'अच्छे समझदार हुए तुम, अच्छे कवि बने। अनाज कहां है?' कवि ने कहा, 'आपने ही तो कहा था कि आज नहीं, कल दूंगा।' सेठ बोला, 'इतना भी नहीं समझ सके। तुमने मुझे बातों से प्रसन्न किया था और मैंने भी तुम्हें प्रसन्न कर दिया। दोनों ओर से समान बात ही है। तुमने मुझे दिया क्या था, केवल बातों से ही तो प्रसन्न किया था। मैंने भी तुम्हें बातों से राजी किया। चले जाओ।'

—o—

आस्था

माता ने कहा, बेटा, यह लड्डू का बरतन पड़ा है। रोज एक लड्डू खा लेना। दो मत निकालना। जिस दिन दो निकालोगे उस दिन भूत तुम्हारा हाथ पकड़ लेगा।' बच्चा गया। लड्डू का लोभ और खुली छूट थी उसे कि लड्डू चाहे जितने खा लो उसमें से निकालकर अपने आप। उसने हाथ डाला और दो–तीन लड्डू निकालने का प्रयत्न किया। दो या तीन लड्डू पकड़े और निकालना शुरू किया। हाथ निकल नहीं पाया बर्तन से। बच्चे ने सोचा– जरूर भूत ने हाथ पकड़ लिया है। हाथ नहीं निकल रहा है। उसने सारे लड्डू डाल दिए। एक लड्डू निकाला और खा लिया। मां के पास आया और आकर बोला, 'मां, तुमने ठीक कहा था। तेरी बात बहुत सच्ची होती है। मैंने दो लड्डू निकालने का प्रयत्न किया

तो भूत आया, मेरा हाथ पकड़ लिया।' एक आस्था बन गई– एक आस्था का भ्रम हो गया। बर्तन का मुंह छोटा था। दो निकाल कैसे सकता था? नहीं निकाल सकता था, पर बच्चे के मन में एक ऐसा भ्रम पैदा हो गया कि मां जो कहती है वह बात ठीक कहती है।

—o—

नीचे भी देख लो

एक था ज्योतिषी, खगोलशास्त्री। वह इतना आकाश से सम्बद्ध था कि उसकी दृष्टि और उसका सारा व्यवहार आकाश–दर्शन में ही लगता था। रात होती और उसकी भावनाएं उमड़ जातीं। चाहे वह बैठता, चाहे खड़ा रहता, चाहे टहलता, चाहे खाता, दृष्टि आकाश पर लगी रहती। वह चल रहा था, आंखें आकाश में थीं। चलता चला, चलता चला। थोड़ा आगे गया और गड्ढा आ गया। वह गड्ढे में गिर पड़ा। गड्ढे में कीचड़ था। गड्ढा गहरा भी था। उसमें गिरते ही वह चिल्लाया, 'बचाओ, बचाओ!' पड़ोसी आया, उसने देखा, स्वयं ज्योतिषी गड्ढे में गिरे पड़े हैं। उसने उन्हें यह कहते हुए निकाला, 'महाशय! आकाश को इतना देखते हैं, इतनी ऊंचाई पर देखते हैं तो जरा पैरों की तरफ भी नीचे देख लिया करें।'

—o—

नाटक

नाटक हो रहा था। अनेक दृश्य सामने आ रहे थे। एक अभिनेता आया और उसने इतनी कुशलता से अभियनय किया, ऐसा दृश्य बना कि जार्ज बर्नाडे शॉ दशकों में से उठकर आये और अभिनेता को चांटा जड़ दिया। उसने कहा— यह क्या किया आपने? दूसरे ही क्षण बर्नाडे शॉ संभले। उन्होंने कहा, 'भूल हो गई। मुझे भान ही नहीं रहा कि तुम नाटक कर रहे थे। मैंने तो तुमको असली ही समझ लिया था। मैंने सोचा— तुम बुरा काम कर रहे हो, इसलिए मैंने चांटा लगा दिया।'

—o—

बुखार

डॉक्टरो ने एक प्रयोग किया। एक स्वस्थ आदमी था। एक डॉक्टर आया। उसकी नब्ज देखकर कहा—'अरे! तुम्हें तो ज्वर हो गया है।' वह घर से बाहर निकला। दूसरा डाक्टर रास्ते में मिला। उसने कहा—'यह क्या, लगता है तुम्हें ज्वर हो गया है।' आगे चला। एक तीसरा डॉक्टर मिला। उसने कहा— 'अरे भाई, तुम्हें ज्वर कब से हो गया है।' वह व्यक्ति घबरा गया। वह घर गया। अपने घरेलू डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर आया। उसने कहा—'बुखार हो गया है।' बुखार बढ़ता ही गया।

वह १०४ डिग्री तक पहुंच गया। व्यक्ति घबरा गया। यह तो आत्मशोधन का प्रयोग था। प्रयोग का चक्कर घूमा। नया डाक्टर आया, उसने सारी परीक्षा कर कहा— 'अरे! किसने कहा तुम्हें ज्वर है? तुम तो स्वस्थ हो। तुम्हारी नाड़ी स्वस्थ है। बुखार नहीं है। जिसने बुखार बतलाया वह डॉक्टर पागल था। तुम चिन्ता मत करो। कोई ज्वर नहीं है। तुम ज्वर की बात मन से निकाल दो।' कुछ घंटों बाद परीक्षण किया गया। बुखार नहीं था।

—o—

खुदा के साथ

एक सूफी सन्त थे— सन्त सैयाद। बहुत बड़े साधक थे। जा रहे थे घोर जंगल से। शिष्य साथ में था। समय हुआ, वे नमाज पढ़ने बैठे। कम्बल बिछाया। उस पर बैठ गये। शिष्य भी बैठ गया। इतने में शेर के दहाड़ने की आवाज आयी। शिष्य डरा। उसने अपना कम्बल समेटा और वह तत्काल पैड़ पर चढ़कर बैठ गया। किन्तु सन्त सैयाद अविचल भाव से वैसे ही बैठे रहे। नमाज पढ़ते रहे। शेर वहां आ पहुंचा। आसपास में सूंघकर चला गया। नमाज पूरी की। शिष्य पेड़ से नीचे उतरकर आया। दोनों आगे बढ़ गए। जा रहे थे, इतने में एक जंगली कुत्ता सामने आ गया। जैसे ही कुत्ता सामने आया, सन्त खैयाद

ने अपना डंडा संभाला, और डंडा लेकर प्रतिरोध की मुद्रा में खड़े हो गये। शिष्य देखता रहा। वह पूछ बैठा, 'गुरुदेव! यह क्या? जब शेर आया तब तो आप अविचल भाव से बैठे रहे और एक कुत्ता सामने आया तो आप प्रतिरोध की मुद्रा में खड़े हो गए। मैं रहस्य समझ नहीं पाया।' सन्त खैयाद बोले–'उस समय खुदा मेरे साथ था और अब तुम मेरे साथ हो। उस समय मैं परमात्मा की शरण में था, खुदा मेरी रक्षा कर रहा था। अब तुम मनुष्य मेरे साथ हो।'

–o–

विदेश जाने की आवश्यकता नहीं

एक व्यक्ति ने दारिद्रय से कहा–' मैं कमाने के लिए परदेश जा रहा हूं, यात्रा करना चाहता हूं, तुम यहीं रहकर मेरे घर की देखभाल करो।' दारिद्रय बोला–'यह कैसे हो सकता है? आज तक मैंने तुम्हारा साथ निभाया है। आज मैं तुम्हें अकेले विदेश कैसे जाने दूं? तुम विदेश में रहो और मैं यहां रहूं, यह कैसे संभव हो सकता है? मैं कच्चा मित्र नहीं हूं। मैं सर्वत्र साथ ही रहूंगा।' तब उस व्यक्ति ने कहा–'मुझे तब विदेश जाने की जरूरत ही नहीं है।'

–o–

प्रतीक्षा

एक व्यक्ति ने किसी जौहरी से कहा– 'तुम मेरे घर पर चलो। मेरे पास एक बहुमूल्य हीरे की अंगूठी है। उसका सही मूल्यांकन कराना है।' जौहरी उसके घर गया। पहले दरवाजे में प्रवेश किया। वह व्यक्ति बोला– 'देखो, यह राजस्थानी शिल्प है। कितनी सुन्दर कारीगरी है! शिल्पी ने कितना गजब का शिल्प प्रस्तुत किया है।' दूसरे दरवाजे में प्रवेश किया। व्यक्ति ने जौहरी से कहा– 'देखो, कितना सुन्दर वातायन है। इसकी चित्रकला को देखो। कितने भव्य और सुन्दर चित्र हैं। चित्रकार ने अपनी सारी कला यहां अभिव्यक्त कर दी है।' जौहरी बोला– 'भले आदमी! मुझे इन सब चीजों को देखने–परखने का समय नहीं है। मैं तो हीरे की अंगूठी देखने आया हूँ। बताओ, वह कहां है?' वह बोला– 'धैर्य रखो। जब तुम आ ही गये हो तो मेरी सारी चीजें देखो। यह नहीं होगा कि मैं सबसे पहले हीरे की अंगूठी दिखा दूं। घर आ ही गए तो सब कुछ देखना होगा'।

दोनों ने तीसरे दरवाजे में प्रवेश किया। वह बोला–'जौहरीजी! देखो, कितना सुन्दर स्थापत्य है! दुनिया में अन्यत्र ऐसा स्थापत्य देखने को नहीं मिलेगा।'

इस प्रकार वह सातों दरवाजों का वर्णन करते–करते जौहरी को घुमाता रहा। एक–दो घंटा बीत गया। फिर

उसने कहा–'यह हमारा अतिथिगृह है। यह हमारा स्वागत–कक्ष है। यह भोजन–गृह और शयन–कक्ष है। तुम स्वागत–कक्ष में बैठो। मैं नाश्ते की तैयारी करता हूं। घर आये हो तो बिना खाये कैसे जाओगे?'

इस प्रकार वह जौहरी का समय लेता रहा। नाश्ता कराया। फिर घर की छत पर ले गया। वहां से नगर का दृश्य दिखाया। फिर से भूमिगृह (भोंहरे) में ले गया। वहां उसे एक आसन पर बैठाया। अलमारी खोली। एक डिब्बी निकाली। डिब्बी को खोला। उसमें थी वह हीरे की अंगूठी। उस पर अनेक वस्त्र लपेट रखे थे। एक–एक वस्त्र–खंड को अलग किया। फिर अंगूठी ले जाकर जौहरी से कहा– 'यह है मेरी हीरे की अंगूठी।'

—o—

सम्राट सिकन्दर

एक घटना है– सिकन्दर महान् विश्व–विजय के लिए जा रहा था। एक फकीर मिला। पूछा– कहां जा रहे हो?

— भारत को जीतने के लिए जा रहा हूं– सिकन्दर ने कहा।

— फिर क्या करोगे?

— फिर एशिया को जीतूंगा।

— एशिया को जीतने के बाद क्या करोगे?

— फिर विश्व को जीतूंगा। विश्वविजयी बनूंगा।

— विश्वविजयी बनने के बाद फिर क्या करोगे?

— फिर शान्ति से रहूंगा, आराम करूंगाँ

फकीर बोला– भले आदमी! हिन्दुस्तान को जीतेगे, एशिया को जीतोगे, सारे संसार को जीतोगे, इसमें कितना खून खराबा होगा, कितना युद्ध करना पड़ेगा, कितने लोग मरेंगे। जब शान्ति से जीना है, आराम से जीना है तो अभी क्यों नहीं जी लेते शान्ति और आराम के साथ!

—o—

शास्त्रीय संगीत

शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम था। लोगों को निमंत्रित किया गया था। हॉल खचाखच भर गया। संगीत शुरू हुआ। कोई सिनेमा तो था नहीं। अब अलाप शुरू हुआ तो आधा–पौन घंटा तो आ.... आ... करने में ही लग गया। लोगों ने सोचा कि अरे, यह क्या हो रहा है, सब उठकर चलते बने। सभी चले गये। एक आदमी बैठा रहा। आधा–पौन घंटा तो संगीतज्ञ की आंख ही नहीं खुली। जब आ्रख खुली तो देखा कि हॉल तो खाली है। केवल एक आदमी बैठा है। उसने कहा– चलो, कोई बात नहीं। शास्त्रीय संगीत बड़ा दुरूह होता है। लोग चले गये, कोई बात नहीं, लेकिन मुझे संतोष है, कम–से–कम एक अच्छा

श्रोता तो मुझे मिला। वह बोला— 'बाबूजी! मैं तो संगीत–वंगीत कुछ नहीं जानता। यह जो दरी बिछी हुई है उसे ले जाने के लिए बैठा हूं।'

—o—

सलाह

एक बहुत मार्मिक व्यंग्य है— छोटा मुन्ना और छोटी ही बहन, दोनों खेल रहे थे। इतने में एक हल्ला सुनाई दिया घर में। मुन्ने ने अपनी बहन से पूछा— यह क्या हो रहा है? उसने कहा— मां और पिताजी दोनों लड़ रहे हैं? वह बोली— यह तो मझे पता नहीं लेकिन मैंने सुना कि पिताजी कह रहे हैं कि मैंने तुम्हारे साथ शादी करके बड़ी भूल की। और मां भी कह रही हैं कि मैंने तुम्हारे यहां आकर बड़ी भूल की। दोनों कह रहे हैं कि भूल की। मुन्ना बोला— बिलकुल ठीक कह रहे हैं। मुझसे सलाह किए बिना कोई काम करेंगे तो भूल ही होगी, कभी अच्छा काम नहीं होगा।

—o—

लाभदायक

एक अनुभवी संन्यासी था। उसके पास एक शिष्य आया। शिष्य ने संन्यासी की सेवा की। संन्यासी ने प्रसन्न होकर कहा— लो, यह तेल देता हूं। यह चमत्कारी तेल

है। इसे शरीर में चुपड़ लेना। शरीर सिद्ध हो जाएगा। संन्यासी चला गया। उसने शरीर पर तेल चुपड़ लिया। भक्त लोग आते हैं और शिष्य के शरीर को देखकर दूर से ही भाग जाते हैं। एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीते। उसने सोचा, यह क्या हो गया? सैकड़ों भक्त आते, बैठते, प्रवचन सुनते, अब दूर से ही भाग जाते हैं। यह क्यों? वह अपने गुरु के पास गया और बोला— गुरुदेव! यह कैसे परिवर्तन आ गया भक्तजनों में? कोई पास आता ही नहीं। गुरु ने कहा— इन दिनों तुमने कोई प्रयोग किया था? शिष्य बोला—कोई प्रयोग नहीं किया। एक संन्यासी आया था। बस, इतना ही किया था। गुरु ने उसके शरीर को सूंघा और सूंघकर कहा— अरे, गजब कर दिया तुमने। यह तो सुदर्शन तेल था। उसको लगाने से शरीर पारदर्शी हो जाता है और मन का प्रतिबिम्ब उसमें निखर आता है। तेरा मन अभी सधा नहीं है। उसमें अनेक दोष हैं। यह विकृत है। गन्दा है। इतने दिन तक वह ढंका पड़ा था। कोई उसे जान नहीं पाता था। इस तेल के प्रभाव से तेरा अन्तःकरण शरीर में प्रतिबिम्बत हो गया। भक्त आता है, देखता है और सोचता है— जिन्हें हम प्रमाण करते हैं भगवान मानते हैं वे हृदय से इतने गन्दे हैं, मन से इतने विकृत हैं, तो हम इन्हें कैसे प्रमाण करें? कैसे इनकी भक्ति करें? वे देखते ही भाग जाते हैं। शिष्य! इसे उतारो। तुम्हारे लिए तो तिलों का या सरसों का तेल ही लाभदायक है।

मैं नहीं मानता

आदमी आया। रुपया चुकाना था। सामने लाकर साठ रुपये रख दिए। उसने पूछा कि भाई! मैंने सत्तर रुपये दिये थे, पैंतीस एक बार और पैंतीस एक बार। ये साठ कैसे लाये? उसने कहा— नहीं, पैंतीस–पैंतीस साठ होते हैं। उसने कहा—तुम हजार बार कहो पर मैं तो नहीं मानता। मैं तो यही मानूंगा कि पैंतीस और पैंतीस साठ होते हैं। और ये साठ रुपये मैंने तुम्हारे ला दिये।

—o—

मैं तो छोटा हूं

मालिक ने झुंझलाकर अपने नौकर से कहा— तुम बड़े गधे हो। नौकर ने हाथ जोड़कर कहा— मालिक! बड़े तो आप है, मैं तो छोटा हूं।

—o—

डाक्टर का परामर्श

एक डॉक्टर ने बीमार से कहा, कि तुम तम्बाकू छोड़ दो। पास में खड़े व्यक्ति ने पूछा— डॉक्टर साहब! तम्बाकू नहीं पीएगा तो क्या इससे ठीक हो जाएगा? डॉक्टर ने कहा—ठीक होगा या नहीं मुझे नहीं पता, किन्तु मेरा बिल चुकाने की स्थिति में जरूर आ जाएगा। इतना तो होगा।

इतना धूम्रपान करता है, अर्थशक्ति तो सारी धूम्रपान में ही चुक जाती है। फिर हम बिल चुकाने की स्थिति में ही नही रहते।

—o—

वाणी का चमत्कार

अंग्रेज पानी में डूब रहा था। एक भारतीय ने देखा। उसके मन में करुणा जागी। वह तैरना जानता था। वह पानी में कूदा और अंग्रेज को बचा लिया। तट पर आकर अंग्रेज ने कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए कहा— थैंक्यू। बचाने वाला अनपढ़ था। वह समझा नहीं। उसने समझा— कह रहा हैं फेंक दो। उसने अंग्रेज को उठाकर पुनः पानी में फेंक दिया। बोला— मैंने ही निकाला और मुझे ही कह रहा है फेंक दो। यह सारा वाणी का चमत्कार था, और कुछ नहीं। निकालनेवाला भी वही था, फेंकने वाला भी वही था। करुणा गायब हो गयी उसके मन से। मन में आक्रोश जाग गया। करुणा का स्थान क्रूरता ने ले लिया। अंग्रेज पानी में तड़पता रहा। वह तट पर खड़ा उसे तड़पते देखता रहा।

—o—

एक काम आप ही कर दें

गुरु और शिष्य दोनों सो रहे थे। वर्षा का मौसम था। गुरु ने करवट बदलकर शिष्य से कहा— बाहर जाकर देखो कि वर्षा आ रही है या रुक गयी है? शिष्य आलसी था। उठने की इच्छा नहीं थी। उसने तर्क का प्रयोग करते हुए कहा— गुरुदेव! अभी अभी यह कुत्ता बाहर से आया है। आप इसके शरीर पर हाथ फेरकर देख लें। यदि इसका शरीर भीगा हुआ है तो वर्षा आ रहीं है, यदि वह सूखा हो तो वर्षा बन्द हो गयी है। सरल उपाय है।

थोड़ी देर बाद गुरु ने कहा— शिष्य! रात बहुत चली गयी है। नींद नहीं ले पा रहा हूं। दीये का प्रकाश सीधा मुंह पर पड़ रहा है। उठो, दीये को बुझा दो। शिष्य बोला— गुरुदेव! दीया क्यों बुझाएं, आप अपने मुंह पर कपड़ा ओढ़ लें, प्रकाश नहीं दीखेगा, नींद आ जाएगी।

कुछ समय बीता, हवा तेज चलने लगी। गुरु ने कहा—'अरे, उठकर दरवाजा बन्द कर दो। सर्दी के मारे ठिठुर रहा हूं।' शिष्य ने सोते–सोते ही कहा— 'गुरुदेव! मैं दरवाजे से बहुत दूर सोया हुआ हूं। आप पास में ही हैं। पैरों से धक्का दें, दरवाजे बन्द हो जायेंगे।' गुरु ने वैसा ही किया। फिर दरवाजे खुलने लगे। गुरु ने कहा— 'शिष्य! अब उठकर दरवाजे के आगल लगा दो।' शिष्य तड़ककर बोला— 'तीन काम कर दिये तो एक काम आप ही कर दें।'

—o—

धन्यवाद

एक डॉक्टर जा रहा था। एक युवक दौड़ा–दौड़ा आया और बोला—'धन्यवाद डॉक्टर साहब, आपने मेरी भाभी का सफल इलाज किया, उसके लिए धन्यवाद देने के लिए आ गया।' डॉक्टर ने पूछा— तुम्हारी भाभी एकदम स्वस्थ हो गयी?

युवक बोला— हां, डॉक्टर साहब! वह समस्त रोगों से मुक्त हो गयी। रोगों से ही नहीं, इस संसार से भी मुक्त हो गयी।

'डॉक्टर बोला— फिर धन्यवाद कैसे?

'डॉक्टर साहब! उसका वारिस मैं हूं। उसकी सारी सम्पत्ति मुझे मिल गयी। अच्छा इलाज किया आपने कि वह जल्दी ही चल बसी। अन्यथा उसकी सम्पति को पाने के लिए मुझे दो–चार वर्ष और रुकना पड़ता। आपने बड़ा उपकार किया। धन्यवाद!।'

—o—

अपराध

रोम में घटित एक घटना है। दस वर्ष का एक बालक अपराधी बन गया। अपराध करना उसका स्वभाव जैसा बन गया। पचास वर्ष तक उसने अनेक अपराध किये। चालीस बार जेल गया। यातनाएं सहीं। पर वह अपराध

को छोड़ नहीं सका। उसके अपराध–वृत्ति के कारणों की खोज प्रारम्भ हुई। अनेक वैज्ञानिक संलग्न हुए। पूछताछ प्रारम्भ हुई। एक वैज्ञानिक ने पूछा– क्या तुम्हें कभी चोट आयी? उसने कहा– एक बार कार का एक्सीडेंट हो गया था। कनपटी के पास चोट आयी थी। वैज्ञानिक ने उसकी कनपटी का एक्सरे लिया। उससे ज्ञात हुआ कि कनपटी के पास एक नाड़ी में कुछ फंसा हुआ है। आपरेशन किया। उस नाड़ी में कांच का सूक्ष्म टूकड़ा फंसा हुआ था। वह जब भी अवरोध पैदा करता, उस व्यक्ति में अपराध की भावना उभरती और वह कोई–न–कोई अपराध कर लेता। उस टुकड़े को निकाल दिया। उसकी अपराध वृत्ति समाप्त हो गयी। वह एक सभ्य व्यक्ति की गिनती में आ गया।

—o—

पशु की तरह

एक डॉक्टर ने भोज का आयोजन किया। नगर के संभ्रान्त व्यक्ति भोज में सम्मिलित हुए। भोज के प्रारम्भ में डॉक्टर ने कहा– 'सबके सामने भोजन परोस दिया गया है। भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व हम सब एक बात सोच लें कि हमें पशु की तरह खाना है या मनुष्य की तरह।' सारे लोग असमंजस में पड़ गये। वे डॉक्टर के आशय को समझ नहीं सके। डॉक्टर ने अपने कथन

को स्पष्ट करते हुए कहा– 'पशु की तरह खाने का तात्पर्य है जितनी भूख है उतना ही खाना और मनुष्य की तरह खाने का तात्पर्य है भूख न होने पर भी खाते जाना।'

—o—

श्रम का मूल्य

तीन भाई थे। मां ने एक बेटे से कहा– 'जाओ, बाजार से तेल ले आओ।' शीशी लेकर गया, तेल भरा, घर की ओर रवाना हुआ। ऐसा योग अकस्मात् हुआ कि शीशी हाथ से गिरी, कांच की थी, फूट गयी। सारा तेल ढुल गया। रोने लग गया– अब कैसे होगा? मां उलाहना देगी। रोता हुआ घर पहुंचा और रुआंसे स्वर में मां से बोला– 'शीशी गिर गयी, तेल भी गिर गया और पैसे भी गये।' वह रोने लग गया। मां ने दूसरे लड़के से कहा–'तुम जाओ। तेल जरूरी है तेल ले आओ।' वह गया, तेल भरा। आने लगा। आकस्मिक घटनाएं ऐसी होती हैं कि जिनकी व्याख्या करना कठिन होता है। ऐसी ही कोई आकस्मिक घटना घटी कि उसके हाथ से भी शीशी गिर गयी। पर इतना हुआ कि शीशी फूटी नहीं, तेल ढुल गया। पूरा नहीं ढुला, कुछ ढुला। शीशी उठाई। उसने बड़ी संतोष की सांस ली। दौड़ा–दोड़ा आया और मां से बोला– 'देखो मां! कैसी घटना घटी। कितनी खुशी

की बात है कि शीशी गिरी किन्तु फूटी नहीं। तेल ढुला पर पूरा नहीं ढुला। आधा बच गया।' उछलने लगा। बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। मां ने कहा– 'काम पूरा नहीं हुआ। तेल और चाहिए, इतने से काम नहीं होगा।' अब मां ने तीसरे लड़के से कहा– 'अब तुम जाओ। ऐसा मत करना जैसा इन्होंने किया है। तेल लाना है।' उसने भी तेल भरा, आने लगा और उसके साथ भी वही बीता। शीशी गिर गयी, फूटी नहीं, पूरा का पूरा तेल खाली हो गया। ऐसी औंधी पड़ी की तेल गिर गया। उसने सोचा कि बड़ी विचित्र बात है। मां ने तेल लाने के लिए कहा था, मां की बड़ी समस्या है, पर अब तक शीशी पूरी नहीं भर लूंगा तब तक घर नहीं जाऊंगा। वहीं से गया बाजार। श्रम का काम खोजा। पूरी शीशी भरी और मां के पास पहुंचा। बोला– 'यह लो तेल।' 'इतना समय?' बोला– 'इतना समय ज्योति प्रज्वलित करने में लगा। मैंने ज्योति जलाई है, उसमें इतना समय लगा है।'

–o–

तोड़ सकते हैं जोड़ नहीं

महात्मा बुद्ध के पास डाकू आये। बुद्ध ने पूछा– कौन हो? हम डाकू हैं। कैसे आये? आपके पास आये हैं। डाका क्यों डालते हो? समाज की विवशता है।

बुद्ध ने सोचा– यह समाज के विघटन का काम है,

ध्वंस का काम है– ऐसा नहीं होना चाहिए। उनको समझाने के लिए बुद्ध ने कहा– सामने वाले वृक्ष की चार पत्तियां तोड़ लाओ। वे पत्तियां तोड़कर ले आये। बुद्ध ने डाकुओं के मुखिया से कहा– इन्हें लो और वापस जोड़ आओ। मुखिया बोला– हम तोड़ सकते हैं, जोड़ नहीं सकते। बुद्ध ने उन्हें समझाया– देखो, ध्वंस सरल होता है, निर्माण कितना कठिन होता है?

–o–

आशा

लार्ड माउण्टबेटन नौ–सेना में भर्ती होने के लिए परीक्षा देने गये। परीक्षक ने कहा– युवक! जब तुम जहाज लेकर जाओगे, उस समय तूफान आ जाएगा तो क्या करोगे? उत्तर दिया, लंगर डाल दूंगा। फिर आएगा तो? फिर लंगर डाल दूंगा। इतने लंगर कहां से आएंगे? युवक ने उत्तर दिया– जहां से तूफान आएगा, वहीं से लंगर भी आ जाएगा।

–o–

रूप में परिवर्तन

चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार अपने रूप के लिए विख्यात था। उसकी तुलना में रूपवान मनुष्य कोई दूसरा नहीं था। उसके रूप की चर्चा देवताओं तक पहुंची

और वे भी उसे देखने को लालायित हो गये। देवों में भी इन्द्रदेव उसे देखने को आतुर थे। वे देखने के लिए आये और एक बूढ़े का रूप बनाकर चौकीदार से बोले– सम्राट सनत्कुमार का दर्शन करना चाहता हूं। स्वीकृति मिल गयी। भीतर पहुंचा और सनत्कुमार को देखा तो देखता ही रह गया। ऐसा सुन्दर मनुष्य तो क्या, देवताओं में भी कोई नहीं था। बात करने की इच्छा जागी। बोले– सम्राट! बहुत दूर से आया हूं। मेरी चिरकाल की आकांक्षा आज पूरी हुई। सम्राट ने पूछा– भाई! क्या चाहते हो? कहा– चाहता तो कुछ भी नही। आपको देखने की चाह थी वह आज पूरी हो गयी। आपके रूप की चर्चा चारों दिशाओं में गूंज रही है इसलिए आपको देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका। आपको देखा, मेरी भावना पूरी हो गयी, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

सम्राट् सनत्कुमार में अहंकार प्रवेश कर गया। अहंकार ही दृष्टिकोण को गलत बनाता है। वह बोला–'अभी तो न मैंने स्नान किया, न राजसी वस्त्र और आभूषण पहने। अभी तो आपने कुछ भी नहीं देखा। देखो जब तक मैं तैयार होकर राजसभा में आऊं। चक्रवर्ती सम्राट की वेशभूषा में वस्त्रालंकार से सज्जित हो सिंहासन पर बैठूं तब देखो मुझे।' बड़े गर्व से यह बात कही सनत्कुमार ने। बूढे ने कहा–'अच्छी बात है, उस समय भी देख लूंगा।' यह कहकर वह बाहर निकल

गया। चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार ने इतनी साजसज्जा की बूढे को दिखाने के लिए, जितनी वह कभी नहीं करता था। राजसभा में आकर सिंहासन पर बैठा ऐसे गर्व से जैसे चक्रवर्ती सम्राट् नहीं, अहंकार की कोई सजीव मूर्ति बैठी हो। बूढ़े को बुलवाया। बूढ़ा आया सनत्कुमार ने कहा–' अब देखो! रूप इसे कहते हैं।' बूढ़े ने नाक–मुंह सिकोड़ते हुए कहा–'चक्रवर्ती सम्राट्! खूब अच्छी तरह देख लिया तुम्हें, बस अब बात समाप्त हो गयी।' सम्राट ने कहा– कैसा बेहूदा आदमी है? इतना सज्जित रूप मेरा और देखकर नाक–मुंह टेढ़ा करता है। क्या हो गया? बूढ़ा बोला–'जो होना था हो गया, रूप आपका चला गया, समाप्त हो गया।' कैसे' बूढ़े ने कहा– 'हां, समाप्त हो गया।' जरा आप थूकें तो सही।' चक्रवर्ती सम्राट ने थूका तो पीकदानी में देखा कि उसमें कीड़े बिलबिला रहे हैं। बूढ़े ने कहा– 'देखा, आपका सारा शरीर बीमार हो गया, रोग से भर गया। बाहर से आप अपने को सौन्दर्यवान समझते हैं तो समझें, भीतर से आपका सौन्दर्य समाप्त है। प्रमाण रखा किन्तु प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आपके अहंकार ने आपकी चमड़ी को सुन्दर रखा किन्तु भीतर से खोखला कर दिया।'

चक्रवर्ती की आंखें खुल गयीं। अहंकार समाप्त हो गया। तपस्वी बनकर इतनी तेज तपस्या की कि कहा जाता है वही देव एव वैद्य का रूप बनाकर आया। आकर

बोला—'राजर्षि! शरीर आपका इतना बीमार, इतना अस्वस्थ और ऐसे में आप घूम रहे हैं? मेरे पास बहुत मूल्यवान और तेज असर वाली औषधियां हैं। मेरे अनुग्रह को स्वीकार कर उनका सेवन करें। ठीक हो जाएंगे।' मुनि ने कहा, 'मुझे दवा की आवश्यकता नही।' लेकिन वैद्य आग्रह करता ही रहा। मुनि ने कहा— 'तुम मुझे क्या दवा दोगे?' यह कहकर उन्होंने अपनी एक अंगुली पर थूका। जो अंगुली रोग से सड़—गल गयी थी, थूक लगते ही वह कंचनमयी बन गयी। मुनि ने कहा—'मैं चाहूं तो सारी बीमारियों को मिटाकर सम्पूर्ण शरीर को कंचनमय बना सकता हूं। पर इस नश्वर शरीर ने मुझे इतना धोखा दिया कि अब इससे मेरा कोई वास्ता नहीं, कोई अपेक्षा नहीं। मुझे मतलब है उस आत्मा से, उस चेतना से, जिसे पाकर वह नश्वर शरीर मेरे लिए कुछ भी मूल्य नहीं रखता।'

—o—

धार्मिकता कितनी

रूस के सम्राट् पीटर ने एक बहुत बड़ा चर्च बनवाया। उसमें लोगों के साथ स्वयं भाग लेने लगा। उसके साथ चर्च में चालीस हजार आदमी इकट्ठा होते। इतनी विशाल उपस्थिति देखकर पीटर ने पादरी से कहा— 'हमारे देश में धर्म के प्रति लोगों की बड़ी आस्था है।

जनता ने प्रभोभक्त होने का सबसे बड़ा प्रमाण है चर्च में चालीस हजार लोगों की उपस्थिति।' पादरी तो सचाई को जानता था। सम्राट् की बात को काटना ठीक नहीं था, इसलिए कुछ बोला नहीं। उसे एक उपाय सूझा और दूसरे दिन उसने लोगों के पास एक सूचना पहुंचा दी कि आज सम्राट प्रार्थना में भाग, नहीं लेंगे। सम्राट् निश्चित समय पर आये तो देखा प्रार्थना में केवल छह आदमी उपस्थित हैं। सम्राट को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोला— कल तो चालीस हजार आदमी थे, आज छह ही क्यों? पादरी बोला—सम्राट! हमारे राज्य की जनता प्रभू—भक्त नहीं, राजभक्त है, स्वामिभक्त है। आप को देखने आते हैं सब। आज मैंने सूचना प्रसारित करवा दी कि सम्राट नहीं आएंगे तो चालीस हजार में केवल छह आदमी आये।

—o—

दासी के दास

सिकन्दर महान जब फारस के राजा दारा को जीतकर नगर में प्रवेश कर रहा था तो हजारों—हजारों लोग दोनों ओर पंक्तिबद्ध स्वागत में खड़े थे। वे सब एकटक सिकन्दर की ओर देख रहे थे कि उसकी एक दृष्टि पड़ जाये और हम निहाल हो जायें। सिकन्दर ने देखा यह दृश्य और बहुत प्रसन्न हुआ यह देखकर कि

लोगों में मेरे प्रति प्रति कितनी भक्ति है, कितनी श्रद्धा है और कितना आकर्षण है कि एकटक मुझे निहार रहे हैं। लोगों का अभिवादन स्वीकार करते हुए वह आगे बढ़ा। थोड़ी दूर गया और देखा कि सामने से फकीरों की एक टोली आ रही है। सिकन्दर उधर से गुजरा तो देखा कि उन फकीरों ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया, अभिवादन तो दूर। सिकन्दर को बड़ा क्रोध आया कि ये कितने बेहूदे हैं। तत्काल आदेश दिया कि इन्हें बन्दी बनाकर लाओ! सिपाही गये और उन्हें पकड़कर लाये सिकन्दर के सामने। फिर भी वे निर्विकार खड़े हैं, न अभिवादन, न नमस्कार, कुछ भी नहीं। सिकन्दर ने कुपित दृष्टि से देखा और कहा— तुम नहीं जानते कि विश्व–विजेता सिकन्दर तुम्हारे सामने से जा रहा है, फिर तुम सम्मान नहीं करते, अभिवादन नहीं करते।' बड़े आवेश में सिकन्दर ने कहा— तुम्हें पता नहीं चला? उन्होंने कहा— हमें क्या जरूरत है पता रखने की? तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूं? हमें क्या पता तुम कौन हो! आदमी हो तुम, इतना ही पता है। मैं महान सिकन्दर हूं— सिकन्दर महान्। तुम्हें करना चाहिए था हमें सम्मान के साथ अभिवादन। वे बोले— क्यों करें हम अभिवादन? हमें तुमसे क्या् लेना–देना है। मैं विश्व–विजयी हूं। क्यों करते हो विश्व विजय? इसीलिए न कि तुम्हारे मन में एक प्यास है, तृष्णा है और हमने उस तृष्णा को मिटा

दिया है। जो तृष्णा तुम्हारे सिर पर सवार है, वह तृष्णा हमारे पैरों की दासी है और तुम हमारी उस दासी के दास हो, फिर हम क्यों नमस्कार करें तुम्हें?

बात सिकन्दर के मन में इतनी चुभ गयी कि सारा गर्व चूर हो गया। उसने तत्काल उन्हें मुक्त कर दिया। तथा क्षमा मांगी।

—o—

आपत्ति

ब्रिटिश असेम्बली में सर जोन्स का भाषण चल रहा था। ब्रिस्टल चर्चिल अपनी कुर्सी पर बैठे असहमति भाव से अपना सिर हिला रहे थे। जोन्स ने कहा— स्पीकर महोदय! जो कुछ मैं कह रहा हूं वो मेरे व्यक्तिगत विचार हैं, फिर चर्चिल साहब इनकार की मुद्रा में अपना सिर क्यों हिला रहे हैं? चर्चिल ने तुरन्त खड़े होकर कहा— महोदय! मिस्टर जोन्स अपने व्यक्तिगत विचार प्रकट कर रहे हैं और मैं अपना व्यक्तिगत सिर हिला रहा हूं तो उन्हें क्यों आपत्ति है?

—o—

सोने की सीमा

एक बुढ़िया ने ढाबा खोल रखा था। जो यात्री आते–जाते, उन्हें भोजन करती और रात्रि को विश्राम के

लिए स्थान की व्यवस्था करती। एक यात्री आया। ठहरा। भोजन किया। सोने का समय हुआ। उसने पूछा– क्या लोगी? बुढ़िया ने कहा–खाट पर सोने के चार आने। उसने सोचा– खाट पर सोने के चार आने लगेंगे। वह व्यर्थ का खर्च है। नीचे आंगन में लेट जाऊंगा। उसने कहा– मुझे खाट नहीं चाहिए। मैं तो ऐसे ही लेट जाऊंगा। बुढ़िया ने कहा– आंगन में लेटोगे तो एक रुपया। बड़ी अजीब बात कि खाट के चार आने और आंगन पर लेटने का एक रुपया। यह बात समझ में नहीं आयी। बुढ़िया ने कहा– खाट की सीमा है कि तुम इतना स्थान रोकोगे। नीचे लेटोगे तो पता नहीं सारा आंगन ही रोक लोगे मेरा। कहां सोओगे, कोई सीमा ही नहीं है।

–o–

मन की परिणति

राजा की सवारी निकल रही थी। सर्वत्र जय–जयकार हो रहा था। सवारी बाजार के मध्य से गुजर रही थी। राजा की दृष्टि एक व्यापारी पर पड़ी। वह चन्दन का व्यापार करता था। राजा ने व्यापारी को देखा। मन में घृणा और ग्लानि उभर आयी। उसने मन–ही–मन सोचा– 'यह व्यापारी बुरा है। इसे मृत्युदंड दे देना चाहिए।' नगर–परिभ्रमण कर राजा महलों में पहुंचा। मंत्री को बुलाकर कहा– मंत्रीवर! न जाने क्यों उस

व्यापारी को देखकर मेरा मन उद्विग्न हो गया और मन में आया कि उसको मार डाला जाये। मंत्री ने कहा– राजन्! मैं सारी व्यवस्था करता हूं। मंत्री उस व्यापारी के पास गया। औपचारिक बातें हुई। व्यापारी ने कहा– 'मंत्रीवर्य! चन्दन का भाव प्रतिदिन कम होता जा रहा है। मेरे पास चन्दन का बहुत संग्रह है। लाखों रुपयों का घाटा हो रहा है। मन आकुल–व्याकुल है, चिन्ता से भरा है। राजा के सिवाय चन्दन को कौन खरीदे? राजा भी क्यों खरीदेगा? यह प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तु नहीं है। यह तो मरणवेला में प्रचुर मात्रा में काम आती है। मैं घाटे से दबा जा रहा हूं। सच कहूं, आज जब राजा की सवारी निकल रही थी तब राजा को देखकर मेरे मन में आया कि यदि आज राजा की मृत्यु हो जाये तो मेरा सारा चन्दन बिक जाये, अच्छे मूल्य में बिक जाये।'

मंत्री ने सुना। राजा के उदास होने या व्यापारी को मृत्युदंड देने की भावना के जागने का रहस्य समझ गया। मंत्री ने व्यापरी से कहा– हमें चन्दन की आवश्यकता है। तुम्हारे पास जितना चन्दन हो, वह हमारे पास भेज देना। राजकोष से उसका मूल्य मंगवा लेना।

व्यापारी यह सुनकर प्रफुल्लित हो गया। उसका मन आनन्द से भर गया। उसके मन में आया कि राजा चिरायुं हो। वह कृपालु है। वह हजार वर्ष जीये।

राजा की मरण–कामना करने वाला व्यापारी राजा को आशीष देने लगा। उसके लम्बे जीवन की सतत कामना करने लगा।

कुछ समय बीता। एक दिन राजा पुनः नगरावलोकन के लिए निकला। उसी व्यापारी की ओर उसकी दृष्टि गयी। मन में सोचा— कितना भला लगता है यह आदमी! ऐसे अच्छे आदमियों से ही हमारे नगर की शोभा है, श्री है।

व्यापारी की भावना के साथ–साथ राजा की भावना भी बदल गयी। यह है भावों की परिणति। दोनों ने आपस में बातचीत नहीं की, पर अशब्द के शब्द ने सब कुछ बता डाला।

—o—

दरवाजे पर लिखा

आदमी एक होटल में ठहरा। कमरे में गया। सारी खिड़कियां खोल कर बैठ गया। खिड़की से बन्दर आ गया। आदमी ने उसे निकाला। थोड़े समय पश्चात् वह वापस आ गया। एक नहीं, अनेक बन्दर आने–जाने लगे। वह परेशान हो गया। वह मैनेजर के पास जाकर बोला— बन्दर बहुत परेशान कर रहे हैं। कैसे रहा जा सकता है यहां? मैनेजर बोला— चिंता मत करो। बिना अनुमति लिए दरवाजे से कोई अन्दर नहीं आ सकता, मैंने दरवाजे पर लिख दिया है।

घर की प्रतीक्षा

एक शराबी सड़क के किनारे खड़ा था। वह नशे में धुत्त था। पुलिस ने पूछा— यहां क्यों खड़े हो? उसने कहा— मेरे सामने पूरा नगर घूम रहा है। ज्यों ही मेरा घर आएगा, मैं घर में घुस जाऊंगा। घर की प्रतीक्षा में खड़ा हूं।

—o—

मैं मेरे भाग्य का स्वामी हूँ

एक ज्योतिषी हस्त रेखाओं का जानने वाला, सुकरात के पास आया और बोला—'मैं आपका हाथ देखना चाहता हूं और आपके भविष्य की घोषणा करना चाहता हूं।' सुकरात ने कहा— 'ज्योतिषी! मेरा भाग्य पलट चुका है। मैं मेरे भाग्य का निर्माता बन गया हूं। जब जैसा चाहूं वैसा पलट सकता हूं। तुम क्या देखोगे मेरी कुंडली को और क्या देखोगे मेरी हस्तरेखा को! मैं अपने भाग्य का स्वामी हूं।'

—o—

डबल रोटी खाना

कोई कमजोर आदमी था, बीमार था, पूरा पचा नहीं पा रहा था। डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने कहा—'तुम और खाना एक बार छोड़ दो, केवल डबलरोटी खाओ।'

उस आदमी ने किसी से पूछा कि 'भई! डबल रोटी का क्या मतलब होता है?' रोटी तो वह जानता था। उसे डबल का अर्थ बताना–दूना। घर आया। रोज चार रोटी खाता था। पत्नी से बोला– 'आज आठ रोटी खिलाना। डॉक्टर ने डबल रोटी खाने को कहा है।'

–o–

तुम एक काम करो

कोई संन्यासी था। बड़ा आश्रम था। बहुत धन और बहुत लोगों की भीड़। वह परेशान हो गया। गुरु के पास जाकर बोला, 'गुरुदेव! और तो सब ठीक है, पर एक बड़ी समस्या है। भीड़ बहुत हो जाती है, इतने लोग आते हैं कि मैं अपनी साधना पूरी तरह नहीं कर पाता, समय नहीं मिलता। रात–दिन चक्र–सा चलता है।' गुरु ने कहा, 'तुम एक काम करो, गरीब लोग आयें तो उनको कर्ज देना शुरू कर दो और जो धनवान लोग आयें तो उनसे मांगना शुरू कर दो।' उपाय हाथ लग गया। उसने प्रयोग करना शुरू कर दिया– जो निर्धन आते, उन्हें कर्ज देना शुरू किया और धनी आते उनसे धन मांगना शुरू किया। पांच–दस दिन में भीड़ बिलकुल छंट गयी। क्योंकि जिन्होंने कर्ज लिया वे वापस किसलिए आते? सामने आना नहीं चाहते थे, क्योंकि वापस तो देना नहीं था, मुफ्त में मिला है। और धनियों से मांगना शुरू किया

तो उन लोगों ने सोचा कि अब तो जाना ठीक नहीं है। जाते ही पहले यह होगा कि 'लाओ–लाओ'। भीड़ कम हो गयी।

–o–

आप हंस रहे हो।

एक संन्यासी को किसी सन्देहवश दंड मिला। राजा ने दंड दिया कि कोड़े लगाये जाएं। पतला–दुबला था बूढ़ा संन्यासी। अब कोड़े लगने लगे। इधर कोड़ों की सजा समाप्त हो गयी। एक आदमी देख रहा था, पूछा, 'महाराज! आपके इस क्षीण, जर्जर शरीर पर कोड़े बरस रहे थे और आप मुस्करा रहे थे। यह क्या है? आपके शरीर में कहा ताकत है, कहां शक्ति है कि उनको सह सकें? फिर भी आप हंस रहे थे।' संन्यासी बोला, 'विपदा को शरीर–बल से नहीं सहा जा सकता। उसे सहा जाता है — आत्मबल से।' फिर प्रश्न पूछा, 'महाराज! रहस्य बतलाएं कि कैसे उपलब्ध होता है आत्बल? उसका रहस्य क्या है, जानना चाहता हूं।' संन्यासी बोला, 'अच्छे विचार से पैदा होता है आत्मबल। निरन्तर शुभ विचार किया जाए, पोजीटीव विचार किया जाए, विधायक विचार किया जाए, धनात्मक विचार किया जाए, अमंगल विचार कभी न किया जाए तो आत्मबल उत्पन्न होता है।

–o–

पप्पू की मां

एक शराबी था। शराब का बहुत बड़ा शौकीन। शराब पी ली पर डर था पत्नी को पता न चल जाए। शराब में धुत्त होकर आया। सोचा, आज पत्नी को बिल्कुल पता नहीं चलने दूंगा। पत्नी द्वार के पास खड़ी थी। वह घर में घुसा। घर में भैंस बंधी थी। वह भैंस के पास गया और पूंछ को पकड़कर बोला, 'पप्पू की मां! तुम सदा तो दो चोटियां बनाती हो, आज तो तुमने एक ही चोटी बनायी है।' पत्नी समझ गयी कि पतिदेव पीकर आये हैं।

—o—

कार्य में मस्त

रवीन्द्रनाथ पत्र लिख रहे थे। एक व्यक्ति आया मारने के लिए। हाथ में छुरा था। आकर खड़ा हो गया। उन्होंने देखा कि कोई व्यक्ति आया है, देख लिया। अपना काम करते रहे। उन्होंने कहा, 'क्या चाहते हो?' उत्तर मिला, 'मैं तुमको मारना चाहता हूं।' रवीन्दनाथ ने कहा, 'जरा ठहर जाओ। मुझे जरूरी पत्र लिखने हैं। पत्र लिख लूं, फिर तुम मार डालना' वह पीछे खड़ा है छुरा लिये और रवीन्द्रनाथ अपना काम करते चले जा रहे हैं। निश्चल भाव से काम करते रहे। कोई विचलन नहीं। व्यक्ति दंग रह गया। उसने सोचा, यह भी कोई आदमी है, मैं कैसे

मारूं? जो जीना जानता है उसे मारने से कोई लाभ नहीं। सामने आकर पैरों में पड़ गया और छुरा हाथ से गिर पड़ा। यह अभय उस व्यक्ति में विकसित होता है जिसने आन्तरिक शक्ति का स्रोत विकसित कर लिया हो।

—o—

कुरूप ही कुरूप

एक गुरु के पास कोई डंडा था। उस डंडे की विशेषता थी कि जिधर घुमाओ उधर उस व्यक्ति की सारी खामियां दीखने लग जाएं। अच्छा साधन मिल गया। शिष्य को दे दिया डंडा। कोई भी आता, शिष्य डंडा उधर कर देता। सब कुरूप–ही–कुरूप सामने दीखते। अब भीतर में कौन कुरूप नहीं है? हर आदमी कुरूप लगता। किसी में क्रोध ज्यादा, किसी में अहंकार ज्यादा, किसी में घृणा का भाव, किसी में ईर्ष्या का भाव, किसी में द्वेष का भाव, किसी में वासना की उत्तेजना। हर आदमी कुरूप लगता। बड़ी मुसीबत, कोई भी अच्छा आदमी नही आ रहा है। उसने सोचा— गुरुजी को देखूं, कैसे हैं? गुरु को देखा तो वहां भी कुरूपता नजर आयी। गुरु के पास गया और बोला कि महाराज! आप में भी यह कमी है, यह कमी है। गुरु ने सोचा कि यह मेरे ऊपर भी प्रयोग हो गया। मेरे अस्त्र का मेरे पर ही प्रयोग! बताता गया, कई दिन तक बताता गया। गुरु आखिर गुरु था।

उसने कहा कि डंडे को इधर–उधर घुमाते हो, कभी अपनी ओर भी जरा घुमाओ। घुमाया। देखा तो पता चला कि गुरु में तो केवल छेद ही थे, यहां तो कई बड़े बड़े छेद पड़े हैं। बड़ा असमंजस में पड़ गया।

–o–

कंजूसी का असर

आदमी बीमार हो गया। रक्त चढ़ाने की जरूरत हुई। डॉक्टर रक्त चढ़ाता है तो पहले ग्रुप मिलाता है। किस ग्रुप का रक्त है? ठीक मिला या नहीं? सेठ को रक्त चढ़ाना था– एक कंजूस आदमी का रक्त ठीक मिला, चढ़ाया गया। सेठ को पता चला कि उसको कंजूस का रक्त चढ़ाया जा रहा है। सेठ बड़ा उदार था। अपने मुनीम को कहा, 'उसको तीन हजार रुपया दे दो।' दूसरी बार फिर खून चढ़ाने की जरूरत हुई। उसी कंजूस का रक्त। सेठ ने कहा, 'उसे सौ रुपये दे दो।' तीसरी बार जरूरत हुई तो सेठ ने एक कागज लिया और उस पर लिखा–साधुवाद धन्यवाद्

ऐसा क्यों हुआ? सेठ तो उदार था किन्तु जिसका रक्त चढ़ाया जा रहा था, वह कंजूस था। उसका इतना प्रभाव हुआ कि जब तक रक्त का पूरा प्रभाव नहीं हुआ तो तीन हजार रुपये दिए, थोड़ा हुआ तो सौ रुपये और पूरा प्रभाव हुआ तो धन्यवाद दिया।

तुम ठीक कहती हो

एक आदमी के मस्तिष्क का प्रत्यारोपण किया गया। वह स्वस्थ हो गया। बहुत बोलने लगा। बहुत भाषण देने लगा। लम्बी–चौड़ी बातें बघारने लगा। पत्नी बड़ी परेशान हो गयी। डॉक्टर के पास गयी, बोली, 'आपने क्या कर दिया? मेरा पति तो बहुत शान्त था। मौन रहने वाला था। किन्तु जब से आपने ऑपरेशन किया, प्रत्यारोपण किया, तब से सारे दिन बकवास करता है– सब परेशान हो गये हैं। डाक्टर ने अपना कान पकड़ा, बोला, 'तुम ठीक कहती हो। यह किसी राजनेता का मस्तिष्क था और वह लगा दिया, इसलिए सारी गड़बड़ हो रही है।'

–o–

पारस पत्थर

पारस पत्थर के विषय में अनेक किंवदंतियाँ देखने में आई हैं।

उड़ीसा भुवनेश्वर के पास एक नदी को खोदते हुए, एक मजदूर का फावड़ा अचानक ही सोने का हो गया। यह बात जब अकबर को पता चली तो उसने पारस पथरी को ढूंढ़ने का बहुत प्रयास किया। परन्तु बहुत प्रयास करने पर भी 'पारस पथरी' उसको प्राप्त नहीं हो पायी।

लगभग उससे भी हजार वर्ष पुरानी बात है एक ब्राह्मण तपस्वी, सदाचारी, सत्यभाषी, दानी और ईश्वर भक्त था। सौभाग्य से एक दिन उसे एक पत्थर का टुकड़ा मिल गया। एक दिन अकस्मात वह पत्थर लोहे की छड़ पर लग गया, तत्क्षण ही वह लोहे की छड़ सोने की तरह जगमगाने लगी। ब्राह्मण को यह देखकर, विश्वास हो गया कि, हो न हो, यह पारस पत्थर ही है। उसके तो हर्ष का ठिकाना न रहा। प्रसन्न मन ब्राह्मण ने उस 'पारस पथरी' से इतना धन बना लिया कि लोग उसे नगर सेठ कहने लगे। उसने भी अब तो 'दान–पुण्य' करना प्रारम्भ कर दिया। जगह–जगह स्कूल, धर्मशाला, विधवाश्रम अनाथालय इत्यादि बनवाकर लोक सेवा करना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ समय बाद सूर्यग्रहण आया। यह पर्व कुरुक्षेत्र में मनाया जाता है, सेठ जी इस पर्व पर कहाँ पीछे रहने वाले थे। उन्होंने वहाँ पर एक बहुत विशाल लंगर लगाया। अनेक रसोइये इस कार्य को विधिवत् सम्पन्न करने हेतु बुलाये गये। और एक बहुत बड़ा बोर्ड लगाया गया, जिस पर लिखा था, "सब लोग यहाँ भोजन करें, यह लंगर जनता–जनार्दन की सेवार्थ ही लगाया गया है। आने–जाने वाले भोजनोपरान्त दक्षिणा एवं मार्ग व्यय भी यहीं से प्राप्त करें।"

उस लंगर में सदैव भीड़ लगी रहती थी। सब भोजन

पाते और मनचाही दक्षिणा लेकर चले जाते थे।

मेला समाप्ति पर आने लगा। भीड़ भी अब सभी तरह कम होने लगी थी। सेठ जी ने अब सोचा–कोई इस मेले में भूखा न रह जाये, अतएव वे घूम–घूम कर भोजन करने हेतु लोगों को बुलाते थे। एक दिन घूमते–घूमते वे एक वृक्ष के पास पहुँच गए, देखा एक तरुण संन्यासी 'पदमासन' लगाए, वटवृक्ष के नीचे आसन पर बैठा है। मुखमण्डल ब्रह्मचर्यमयी त्रिपुण्ड से देदीप्यमान है। लंबी–लंबी जटायें भाल पर त्रिपुण्ड लगाए गले में रुद्राक्ष की माला डाले, वह संन्यासी ध्यान में निमग्न है।

सेठ जी ने साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते हुए उनसे प्रार्थना की महाराज ! आपका भोजन मेरे आश्रम में होगा तो मैं अपने आपको धन्यभाग समझूंगा। आप कृपाकर मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।

महाराज मुस्कराने लगे, बाले सेठजी तुम धन्य हो जिन्होंने यह सदावर्त लगाया है। किन्तु मैंने तो कई योनियों में खाया ही खाया है। अतः मैने अब खाना छोड़ दिया है। सेठ जी तो हाथ जोड़े खड़े ही थे कि इतने में एक बुढ़िया जिसकी पीठ और पेट भूख के कारण एक हो गया था होंठ सूखे तथा बाल बिखरे हुए हाय भूख, हाय भूख से मरी कहती हुई दिखाई दी।

महात्मा जी उस बुढ़िया को देखकर बोले सेठ जी!

यदि तुम्हें भोजन कराना ही है तो इस बुढिया को भोजन कराओ यह बेचारी अबला भूख से मर रही है।

सेठ जी ने कहा, महाराज मुझे स्वीकार है, उसने सोचा यह बुढ़िया कितना खाएगी, भूखा प्राणी ऐसे ही करता है। सेठ जी ने कहा, माताजी चलो मेरे साथ, और भोजन प्राप्त करो।

बुढ़िया बोली, मुझमें भी एक रोग है बेटा ! यदि वहां मेरा पेट न भरा और मेरी तृप्ति न हो पाई तो मैं उस व्यक्ति को खा जाऊँगी जो मुझे वहां भोजन कराएगा।

सेठ जी ने कहा, ठीक है माता जी ! आपको पेट भर कर भोजन करा देंगे।

सेठजी बुढ़िया को अपने यहां ले आये, रसोइयों को कहा– इनको पेट भरकर भोजन करा दो। यह बेचारी भूख से मर रही है।

भोजन परोसा गया, बुढ़िया खाने लगी। खाते–खाते जितना अन्न था सब खा गयी। मैस अब खाली हो चला था। बुढ़िया ने कहा और दो, और दो, परन्तु वहां शेष कुछ बचा ही न था। जो उसको दिया जाता।

बुढ़िया अब खड़ी होकर सेठ जी पर लपक पड़ी और बोली, मैंने पहले ही कहा था कि मेरी भूख खाते–खाते और बढ़ती है।

सेठ जी घबराये, उन्होनं सोचा मृत्यु मेरे सामने ही है। अब इससे छुटकारा पाने के लिए, उन्हीं महात्मा के

पास चलना चाहिए। तब ही मेरी जान बचेगी।

वह दौड़ने लगा, बुढ़िया भी उसके पीछे दौड़ने लगी। दोनों साधु के सामने जा पहुँचे। साधु ने कहा, सेठ जी बुढ़िया का पेट तुम नहीं भर पाये। क्योंकि यह तो तृष्णा है, जितना दो, उतनी ही भूख बढ़ती है।

"तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती।" सेठ जी! महात्मा जी ने तब बुढ़िया को इशारा किया। बुढ़िया तत्क्षण ही अन्तर्ध्यान हो गयी, और सेठ जी को छुटकारा मिल गया। वे अपने को धन्य भाग समझते हुए अपने निवास स्थान पर लौट आये।

अब सेठ जी ने विचार किया कि इस 'माया–मोह' में लिप्त रहना तो अपने लिए काल को निमंत्रण देने के समान ही होगा। इसीलिए अब इस माया–मोह, धन–सम्पति को त्यागकर, उनकी ही सेवा करूँगा। अब वस्तुतः मुझे साक्षात परमात्मा के दर्शन हो गये हैं। अतः अब उनकी सेवा में ही अपना जीवन अर्पण करूँगा।

उन्होंने अपना डेरा डण्डा उखाड़ दिया, बर्तन भाँडे नौकरों को देकर, नंगे हाथ उसी वट वृक्ष की ओर चल पड़े, चलते–चलते वहां पहुँच भी गये, किन्तु वट के नीचे न अब महात्मा जी हैं, न वहां पर धूनी है।

सेठ जी हतोत्साह नहीं हए। उन्होंने प्रण कर लिया था कि महात्मा जी के चरणों में ही रहूंगा। उन्होंने अब निश्चय कर लिया था कि– "प्राण त्याजयामि कार्य

साधयामि।" अपने कार्य को पूरा करूंगा या अपने प्राणों को त्याग दूँगा।

महात्मा जी किस दिशा में गये, यह तो पता नहीं था, परन्तु सेठ जी का जिधर को मुख था। वे उसी दिशा में चल पड़े।

भूखे प्यासे तीन दिन के बाद सेठ जी एक बीहड़ जंगल में पहुँचे। भूख प्यास से अस्थि पिंजर शिथिल हो रहे थे, नींद अलग से सता रही थी। उनके लिए एक–एक पग चलना मुश्किल हो रहा था।

परन्तु महात्मा जी का अब तक कुछ भी अता पता न था। अन्त में वे एक पेड़ के नीचे बेहाल होकर गिर पड़े और बेहोश हो गये।

प्रातः 'काल हो गया, चिड़िया कलरव करने लगीं, मन्द–मन्द समीर बहने लगी। अब सेठ जी की आंखें खुलीं। भगवान का स्मरण करते हुए उठे तो उन्होंने देखा कि उनके ऊपर मृगचर्म पड़ा हुआ है। अब उनको विश्वास हो गया कि इस बीहड़ जंगल में मृगचर्म मेरे गुरु ने ही ओढ़ाई होगी। उनके अतिरिक्त यह कृपा अन्य कोई नहीं कर सकता।

वे उठे और पुनः चल पड़े। चलते–चलते दिन पूरा हो गया। थके माँदे तो थे ही परन्तु फिर भी वे चलते ही रहे। थोड़ी देर चलने पर एक छोटी–सी बटिया दिखायी दी अब सेठ को भरोसा हो चला कि अब मैं

मंजिल के निकट ही हूँ और गुरु महाराज के दर्शन अब अवश्य ही होंगे।

रात एक पेड़ की नीचे बिताई प्रातः काल हो गया, सूर्य भगवान ने चारों और अरुणाई बिखेर दी।

वह उठे और कन्धे पर मृग चर्म डालकर, पुनः उस बटिया पर चल पड़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक झोंपड़ी दिखाई दी। वे हर्षित हो उठे, उन्हें विश्वास हो गया। हो ना हो यही गुरु महाराज की कुटिया है। झोंपड़ी के और समीपं जाने पर उन्होंने देखा, कि झोंपड़ी के चारों और नाना प्रकार के पुष्प खिले हुए हैं और उन पर भौरें गुंजार कर रहे हैं, तितलियां मंडरा रही हैं।

आगे और आने पर उन्होंने देखा, कि झोंपड़ी के दरवाजे पर दोनों ओर दो शेर बैठे हैं।

शेरों और सेठ जी की निगाहें एक हुई, किन्तु दोनों शेरों की आँखों में शान्ति विराजमान थी।

सेठ जी थोड़ा सा और आगे बढ़े उन्होंने झोंपड़ी के अन्दर झाँका, तो वही मोहनमयी सुन्दर मूर्ति, पदमासन में ध्यानावस्थित दिखाई दी।

अब तो उनको मनवांछित वस्तु मिल गयी। वे प्रसन्न हो गये। भूख प्यास तो जैसे उनकी कोंसों दूर भाग गयी थी। उन्होंने मृगचर्म को कन्धे से उतार कर, फलवाड़ी के कोने में बिछाया, और उस पर निश्चल होकर बैठ गये।

एक सप्ताह बीत गया, परन्तु ध्यानावस्थित स्वामी जी की समाधि खुल ही नहीं पाई। दानाध्यक्ष सेठ जी अब उस ध्यानावस्थित मूर्ति के ध्यान में अपने तन–बदन को भूल चले थे।

आठवें दिन गुरु महाराज की समाधि खुली, उन्होंने देखा वही दानाध्यक्ष आसन लगाये बैठा हुआ है।

वे उसकी निष्ठा को देखकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए, और बोले, आयुष्मान वत्स! प्रसन्न रहो।

सेठ जी चरणों पर गिर पड़े, आंखों से अश्रुधारा बह चली, गद–गद कण्ठ हो गया। प्रेम की अधिकता से, कण्ठ अवरूद्ध हो गया था। कुछ क्षण बीतने पर, महाराज ने उन्हें उठाया, और आश्वासन दिया, 'अरे भाई अब तो तुम इस आश्रम के विरक्त माली हो।

दानाध्यक्ष सेठ जी अब अपने मनोरथ को पूर्ण जानकर बहुत प्रसन्न थे। अब उनकी सब इच्छायें, कामनायें समाप्त हो गयीं।

एक मास बीत गया, वे पुष्प–वाटिका की सेवा निष्काम भाव से करते रहे। दिन बीतते रहे, महाराज सोचते रहे कि इस दानी ने सब आकांक्षायें छोड़ दी हैं, घर बार छोड़ दिया है, अहं ममता से भी रहित हो गया है। किन्तु इसने अभी तक पारस पथरी के मोह को नहीं त्यागा है।

एक दिन सांयकाल संध्या का समय था। महाराज

ने कहा भक्त प्रवर! चलो गंगाजी के तट पर संध्या करने चलें। दानाध्यक्ष बोले जो आज्ञा गुरुदेव।

दोनों अब गंगा के तट पर चले आये और एक सुन्दर पत्थर की शिला पर बैठ गये।

सेठ जी भावुक होकर अपने जीवन की 'आदि–अन्त' कथा का वर्णन करने लगे और महाराज बड़े ध्यान से सुनने लगे।

कुछ समय बाद महाराज बोले, भैया ! इतना दान–पुण्य तुम कैसे करने लगे और महाराज बड़े ध्यान से सुनने लगे।

कुछ समय बाद महाराज बोले, भैया ! इतना दान–पुण्य तुम कैसे करते थे? क्या इसका कारण बता सकते हो?

सेठ जी बोले– महाराज मुझे एक पारस पथरी मिल गयी थी। उसी से मैं लोहे को सोना बनाकर, दीन दुखियों को दान कर देता था। यही मेरे पास था जिसके कारण लोग मुझे दानाध्यक्ष कहने लगे।

महाराज ने कहा– भैया पारस पथरी कैसी होती है? सर की जटाओं में बांधे रहते थे। तत्काल ही सेठ जी ने अपनी जटा से उस पारस पथरी को निकाला, और पारस पथरी को महाराज के हाथ पर धर दिया। महाराज ने उलट–पुलट कर देखा और कहा, क्या बस यही पारस पथरी है? झट से उसे गंगा जी में फेंक दिया।

पारस पथरी के फेंके जाने पर उनका मोह जागा, सोचने लगे कि जिस पारस पथरी से मैंने इतना दान किया है, जिसको मैंने आज तक इतने प्यार से रखा था। आज इस विरक्त साधु ने बिना कुछ सोचे गंगा जी में फेंक दिया। मेरी प्यारी पथरी आज मुझसे अलग हो गयी।

महाराज अन्तरयामी थे, उनके मन की बात जान गये। कि यह पथरी फेंकने से दुःखी हो गया है।

कुछ देर बाद स्वामी जी बोले, चलो भाई अब जरा स्नान कर लें। दोनों ने स्नान कर लिया। महाराज कुछ पहिले ही शिला पर आ गये, भक्त सेठ जी गंगा में ही थे। महाराज बोले गंगा जी में गोता मारकर जितने पत्थर तुम्हें मिलें, सबको अन्जली में भरकर ले आओ।

दानाध्यक्ष ने गोता लगाया और दोनों हाथों से पत्थर बटोर कर, वह महाराज के पास शिला पर आ गये। महाराज बोले, इसमें तुम्हारी पारस पथरी भी है।

सेठ जी ने जो अपनी पारस पथरी को देखा तो मन ही मन हर्षित हो उठे, परन्तु तत्काल ही उनके मुखमण्डल से हर्ष की रेखा दूर हो गई। उन्होंने देखा कि 'उनकी एक छोटी सी पारस पथरी, इसके अलावा, उनकी अंजली में अनकों बड़ी–बड़ी पारस पथरियां भरी पड़ीं हैं। वे बड़े आश्चर्यचकित थे।

महाराज बोले, वत्स ! तुमको जो पारस–पथरी

अच्छी लगे उसे अपने पास रख लो।

दानाध्यक्ष की आँखें अब खुल चुकी थीं। उसने सोचा मैं केवल एक छोटी सी पथरी का मोह कर रहा था। और ये महाराज इतने बड़े पत्थरों का भी मोह नहीं कर रहे हैं। मेरे इस मोहजाल को धिक्कार है।

वे महाराज के चरणों में श्रद्धानत हो गये और बोले। महाराज आपकी कृपा से मेरा मोहजाल नष्ट हो गया है। सच्चा ज्ञान आ गया है। मैं अब आपकी शरण में हूँ। यह कहकर उन्होंने सब पत्थर गंगाजी में फेंक दिये।

दोहा केहरि मूंछ अरु सूमधन, पतिव्रता को गात।
शूर, खंग, अरु भुजंग मणि, मरे लगे हैं हाथ।।

अर्थ– शेर की मूंछ, कन्जूस का धन, पतिव्रता स्त्री का शरीर, शूरवीर की तलवार और साँप के सिर की मणि, जीते जी कोई नहीं छू सकता अर्थात नहीं प्राप्त कर सकता। इनके मरने पर ही ये चीजें हाथ आयेंगी।

राजा भोज

एक बार धारा नगरी के सम्राट, राजा भोज, और उनकी राजसभा के विद्वान कवि 'माघ' भ्रमण हेतु राजमहल से निकले दोनों ही प्रसन्नचित एवं मनो–विनोद करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। दोनों मित्रों के मध्य बहुत ही सुन्दर वार्ता हो रही थी।

अपनी मनोहारी वार्ता में मशगूल दोनों मित्रों को इस बात का भी पता न था कि कब रात घिर आई, और अंधेरे की काली चादर ने कब उनको अपने आँचल में समेट लिया वातावरण में अचानक ही परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। जो आकाश कुछ देर पूर्व बिल्कुल शान्त, अविचल प्रतीत होता था। वह अब गड़–गड़ की आवाज के साथ वातावरण को डरावना बना रहा था। रह–रहकर आकाश में बिजली चमक रही थी।

दोनों मित्रों को अब अपनी सुध आई। अभी दोनों कुछ सोचते, कि एकाएक मूसलाधार वर्षा भी प्रारम्भ हो गई।

काली अंधेरी रात के कारण वे राजमहल का रास्ता भी भूल गये। ठंड बढ़ती जा रही थी, दोनों मित्र ठंड में काँपते हुए एक दूसरे का मुख देखने लगे। उनके सामने यह बहुत बड़ी समस्या हो गई, कि इस वियाबान जंगल और अंधेरी रात में राजमहल का द्वार किससे पूछें?

दूर खेत में प्रकाश की किरण देखकर माघ बोले– महाराज दूर खेत में एक झोंपड़ी दिखाई दे रही है, वहां खेत का रक्षक अवश्य होगा चलिए वहां चलकर मार्ग पूछलें।

दोनों झोंपड़ी के पास पहुँचे वहां जाकर उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया अन्दर बैठी आग सेक रही है। दोनों ने बुढ़िया को प्रणाम किया।

बुढ़िया ने भी प्रत्युत्तर में आशीर्वाद दिया और बोली– पुत्र तुम भीग गये हो, आओ अन्दर आओ, आँच सेक लो। दोनों अन्दर आ गये और बोले माई ! हमें शहर जाना है, हम रास्ता भूल गये हैं। कृपाकर यह बता दो कि यह रास्ता कहाँ जाता है?

बुढ़िया ने कहा– पुत्र रास्ता तो यहीं रहेगा जो इस पर चलेगा। वही जायेगा।

राजा– 'माई हम दोनों राहगीर हैं।'

बुढ़िया– (हँसते हुए) पुत्र राहगीर भी दो हैं। सूरज और चाँद। जो हमेशा रात दिन चलते रहते हैं। बताओ तो सही तुम कौन हो?

यह सुनकर माघ कवि जो अब तक दोनों की बातें सुन रहे थे, बोले माता जी हम दोनों मेहमान हैं।

बुढ़िया– पुत्र ! मेहमान भी दो हैं, एक तो धन, दूजा यौवन जो आता भी है, और चला भी जाता है। बताओ तुम कौन से मेहमान हो? राजा भोज और कवि दोनों ही बुढ़िया माँ के वाक चातुर्य को देखकर हतप्रभ तथा हैरान थे।

राजा पुनः (गम्भीर स्वर में) माताजी ! अब मैं सत्य कहता हूं। मैं तो राजा हूं और ये मेरी सभा के राज पंडित हैं।

बुढ़िया बोली– क्यों झूठ बोलते हो बेटे ! राजा भी दो हैं प्रथम तो राजा इन्द्र दूजे काल जो सबको मृत्यु प्रदान करते हैं। अब तुम ठीक–ठीक बताओ कि तुम कौन

से राजा हो?

माघ कवि– माँ हम दोनों मजदूर हैं।

बुढ़िया– देखो ! मुझे बहकाओ मत मजदूर भी दो हैं। प्रथम तो पृथ्वी द्वितीय स्त्री जो सबका बोझ उठाए रहती है।

राजा ने पुनः कहा–माताजी हम दोनों परदेशी हैं।

बुढ़िया– (पुनः हँसते हुए) परदेशी भी दो हैं पुत्र! प्रथम तो जीव द्वितीय पेड़ का पत्ता। जीव जो एक बार जाने पर पुनः वहाँ नहीं आता और उसी तरह पेड़ का पत्ता जो एक बार शाख से टूटता है तो दोबारा वहाँ जाकर नहीं जुड़ता। तुम सच–सच बोलो कि तुम कौन हो?

राजा– (साहस बटोरकर) माँ हम दोनों गरीब हैं दया के पात्र हैं।

बुढ़िया– पुत्रों ! मैं दो गरीबों को जानती हूं। प्रथम तो गाय, दूजी लड़की। इन दोनों को जिसके साथ भी हाथ में दो, चुपचाप चले जाते हैं।

माघ– (धैर्य खोकर) माता जी यदि रास्ता बतलाना हो तो बतला दो अन्यथा हम तो तुम से हार गये हैं।

बुढ़िया– (हँसकर) भाई ! हारे हुए भी दो हैं प्रथम कर्जदार दूसरा बेटी का बाप।

यह सुनकर माघ कवि राजा का मुख ताकने लगे। राजा ने (कुछ सोचकर) बुढ़िया के चरण पकड़ लिए और

कहा, माँ रास्ता बता दो।

इस पर बुढ़िया ने मुस्कुराते हुए कहा, पुत्रों! मैं तुम दोनों को पहचान गई हूं। तुम राजा भोज हो ये महाकवि माघ हैं। सामने के रास्ते पर चले जाओ आगे शहर का रास्ता मिल जायेगा। दोनों मित्र उस वृद्ध बुढ़िया के बुद्धि–चातुर्य और वाक् वैशिष्ट्य की प्रशंसा करते हुए राजमहल लौट आये।

सत्य का फल

दण्डकारण्य में देवदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने पुत्रेष्ठी यक्ष करवाया।

याज्ञवल्क्य को अध्वर्युं, सुहोत्रा को वर्मा, वृहस्पति को होता, और गोमिल को उद्‌गाता बनाया। यज्ञ सुचारू रूप से चलने लगा।

एक दिन, गोमिल को सामवेद गाते–गाते खांसी आ गई। यजमान देवदत्त जो वेदों का भी ज्ञाता था। छन्द की 'अशुद्धि' होते देख उसने गोमिल को टोक दिया। गोमिल भी क्रुद्ध हो गया, उसने कहा, तुम यजमान होकर मुझे टोक रहे हो। इसी लिए मैं तुम्हें शाप देता हूं। जिस पुत्र के निमित्त तुम 'पुत्रेष्ठी' यज्ञ करा रहे हो, "वह तेरा पुत्र मूर्ख होगा।" उसकी मूर्खता के कारण तू उसको सदैव टोकता रहेगा।

यज्ञ में पुनः शान्ति हो गई। और इसके साथ ही

यज्ञ भी परिपूर्ण हो गया।

समय चक्र चलता रहा। इसी मध्य देवदत्त के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने उसका नाम 'उतथ्य रख दिया। गोमिल के शाप से वह मूर्ख निकला। देवदत्त ने सोचा यह वेद तो पढ़ेगा नही, और पढ़ेगा भी तो अशुद्ध बोलेगा। इसीलिए इस को सत्य बोलने की आदत डालनी चाहिए। पिता ने पुत्र से कहा, कि सदैव सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करो।

"मैं सदैव सत्य ही बोलूँगा, झूठ कदापि नहीं बोलूँगा।" क्योंकि–

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके ह्रदय सांच है, ताके ह्रदय आप।।

अर्थात सच के बराबर कोई तप नहीं जिसके पास सत्य का अस्त्र है, उसके ह्रदय में स्वयं भगवान निवास करते हैं।

उतथ्य पितृभक्त था, उसने पिता की सीख धारण कर ली और प्रतिज्ञा कर ली, कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा। चाहे प्रांण चले जायें।

उसने दण्डकारण्य में गंगा के तट पर अपनी कुटिया बनाई और वहीं पर तपस्या करने लगा।

एक दिन उस अरण्य में एक शिकारी आया। उसने

एक टीले पर एक हिरणी को बच्चे सहित देखा। उसने तुरन्त ही उस हिरन को मारने के लिए ऐसा जाल बिछाया। जिससे वह कहीं से भी भागने न पावे।

आगे से वह स्वयं धनुष बाण लेकर मारने को उद्यत था, दोनों पार्श्वों में उसने जाल लगा दिये, पीछे से आग और सामने से शिकारी कुत्ते छोड़ दिये।

इधर अबला हिरणी, एक तो गर्भवती है और दूर जाना चाहती है, और उस पर भी 'साथ बच्चा' उसके पाँवों को रोक रहा है।

ऐसे मृत्यु के समय में हिरणी सोचती है, अब क्या करूँ? भगवन् ! अब तू ही रक्षक है।

ईश्वर कृपा से आग बुझने पर हिरणी भागने लगी।

व्याघ ने देखा तो वह भी उसके पीछे–पीछे दौड़ चला।

आपत्तिकाल था, हिरनी बच्चे सहित 'उतथ्य' की कुटिया के अन्दर चली गई। व्याघ भी पीछे–पीछे 'उतथ्य' के द्वार पर पहुँच गया। और उसने पूछा– हे सत्यव्रती मुनिवर ! क्या आपने मेरा शिकार देखा है? मेरा परिवार भूखा है, जब मैं शिकार मार कर ले जाऊँगा। तब ही मेरा परिवार भूख मिटा सकेगा।

'उतथ्य' अब धर्म संकट में पड़ गये। वे सोचने लगे, यदि सत्य कहता हूं तो यह बेचारी मृगी मारी जायेगी। झूठ कहता हूं तो मेरी तपश्चर्या भंग हो जायेगी।

आखिर निश्चय किया। 'झूठ तो बोलना नहीं है। कहूंगा तो सत्य ही।' इस तरह विचार कर मुनि व्याघ से बोले, रे व्याघ ! मैंने सत्य बोलने की कसम खाई है। अतः सुनो मेरी बात पर ध्यान दो।

यो पश्यति, न सा ब्रूते, यो ब्रूते स न पश्यति।
अहो व्याघ स्व कार्यार्थिन किं पृच्छसि पुनः पुनः।।

जिसने तुम्हारे शिकार को देखा है, वह बोलना नहीं चाहता अतः मेरा देखा न देखा एक सम है।

अतः मेरी इच्छा के विरूद्ध बार–बार यह क्या पूछते हो।

इस पर भी यदि तुम पूछना ही चाहते हो तो सुनो, हिरणी मेरी शरणागत है, उसकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, यदि तुम उसको भूख के कारण छोड़ने में असमर्थ हो तो कृपया उसको छोड़कर मुझे भोजन स्वरूप स्वीकार करो। यह तुम्हारा उस पर नहीं अपितु मुझ पर उपकार होगा।

व्याघ मुनि की दयार्द्रता एवं सत्यनिष्ठायुक्त त्याग को देख कर शान्ति के साथ वापस लौट गया।

महापुरुषों की वाणी की गरिमा धधकती अग्नि को भी शांत कर देती है।

–o–

महाराजा चामुंडराय की शिक्षा

महाराजा चामुंडराय ने गुडप्पा पुरोहित पर प्रसन्न होकर उसे नजनगूढ़ जिले का शासक (शासन करने वाला) बना दिया। नियुक्ति–पत्र देकर महाराज ने समझाया–'देखो! शासक को बहुत गम्भीर होना चाहिए। सबके बात अपनी मुट्ठी में रखो। ऐसा न हो कि कोई तुम्हारे कान काट ले जावे। तुम्हें ही दूसरों के कान काटते रहना चाहिए।

गुडप्पा को नजनगूढ़ जिले में पहुँचते ही महाराजा की शिक्षाओं की स्मृति हो आई। उसने सबसे बोलना बन्द कर दिया। सोते हुए अपने कर्मचारियों के बाल काट लिये। एक कर्मचारी को निकट बुलाकर उसका कान काट लिया।

लोगों ने नये शासक का विचित्र व्यवहार देखकर महाराजा से शिकायत की। महाराजा ने उसे मूर्ख समझकर गद्दी से उतार दिया।

वास्तव में कहने वाले का ठीक–ठीक अभिप्राय न समझने के कारण ही मूर्ख लोग तिरस्कार किये जाते हैं। महाराजा चामुण्डराय का शासक के विषय में

समझाने का पहला अभिप्राय यह था कि शासक को गम्भीर होना चाहिए अर्थात् सबकी बात सुनकर उस पर गहराई से सोचने–विचारने वाला एवं धैर्यशाली होना चाहिए, न कि चुप रहने वाला। दूसरा अभिप्राय यह था कि शासक को 'सबके बाल अपनी मुट्ठी में रखने वाला होना चाहिए' अर्थात् कौन–कौन व्यक्ति किस–किस विचारवाला है, उन सबकी विचारधाराओं को अपनी विशाल बुद्धि के एक थोड़े से भाग में स्थान देने वाला होना चाहिए, न कि सोते हुए कर्मचारियों के बाल काटकर मुट्ठी में रखने वाला। क्योंकि सबके बाल मुट्ठी में रखे जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

शासक के विषय में समझाने का तीसरा अभिप्राय यह था कि शासक को ऐसा होना चाहिए कि 'उसके कान कोई काट न ले जावे, उसे ही दूसरों के कान काटते रहना चाहिए।' अर्थात् शासक किसी के बहकावे या लोभ व मायाजाल में न आ जावे। शासक को ही अपनी न्याय नीतिपूर्ण बात, कुटिल हृदय में भी प्रवेश करा देनी चाहिए।

—o—